

ट्रस्ट व प्रबंधकारिणीके सदस्य

श्री गान्धर्व कुशुसागर इधमाळा

खासदार (Patron)

१. डा. दा. रा. ल. ग. न. रा. रा. दे. विद्यादर धीमत
मह. सेठ कुशुमभद्रजी मित आराध और बख्त रघैर

Trustees

२. श्री धर्मवीर लेफ्टींट ग. व. ल. सेठ भागवतजी नैला

L. L. A. G. B. E.

किस नाम से काम और बेंच अकार President

३. सेठ हाफारदार नामाचर चौधरी सुबह Vice President

४. ए. ए. गौरी अजा नवजा मोदरा संगार Treasurer

५. सधमन शिरामजी मंडु गीदनमराजा जगें व सुबह

६. सेठ मणालिंग ललित मण्डा मि. ल. ब. व. इत्यादि

७. विद्यावाचस्पति व सधमा गार्डनियार शास्त्री

अनाथक सेवक, मंत्री सुबह गणपत, Hon Secretary

८. सेठ वल्लभलाल काला सुबह

श्री गौ. विद्यादर दे. न.

Members

९. श्री दा. देवरासमसादजी अंत रा. ग. सुबह

१०. श्री बंधुदा व. आचार्यमहो. शास्त्री चैतनी

११. सेठ अण्णार केवलदासजी दाह सुबह

१२. श्री देवगल वरगुर्वेदजागें राह सुबह

१३. श्री रा. इधमादजी काळो सुबह

१४. श्री गान्धर्व अमचद चौधरी धर व बख्त

१५. सेठ वल्लभ शरवाजी चैतने पापुर (वेठमार)

भीमाचार्य कुन्धुसागर प्रथमाला पुष्प न० ९



श्रीमत्परमपूज्य विद्वच्छिरोमणि प्रातः स्मरणाय दिग्बर
जैनाचार्यश्रीकुन्धुसागरजीमहाराजविरचित

लघुबोधसूतसार

[संस्कृत, अग्रजी व हिंदी टीकासहित]

प्रकाशक—

धमनिष्ठ मयाचभूषण

शेठ भार्ताचरजी सरिया, धामवाहा

All rights reserved by the Granthamala

— * —

द्वितीयावृत्ति } वार मवत् २४७१ } बोधसूतपान
५००० } सर् १०४४ }

१

श्रीआचार्य कुथुसागर ग्रन्थमाला.

देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित ग्रंथोंका प्रकाशन व प्रचार करना व अनुरूताके अनुसार इतर प्राचीन जैनग्रंथोंका उद्धार तथा प्रकाशन करना है ।

सामान्य नियम.

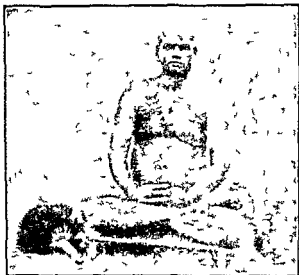
- १ इस ग्रन्थमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकृत की जायगी ।
- २ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रन्थमालाका स्थायी समासद बनेंगे उनको ग्रन्थमालासे प्रकाशित सर्वप्रथम पोस्टेज खर्च लेकर विनामूल्य दिये जायेंगे ।
- ३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिंतक बनेंगे उनको पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रन्थ दिये जायेंगे ।
- ४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनको पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रन्थ दिये जायेंगे ।
- ५ अथ सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे ।
- ६ ग्रन्थोंके मूल्यसे आई हुई रकमका उपयोग ग्रन्थमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थोंके उद्धार में ही होगा ।
- ७ ग्रन्थमालाके ट्रस्टडीड होकर मुबईमें वह रजिस्टर्ड होचुका है ।
सहायता भेजनेका पता—सेठ गोविंदजी रावजी दोशी

ठि रावजी सखाराम दोशी, कोषाध्यक्ष सोलापुर

ग्रन्थमालासंबन्धी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मन्त्री—आचार्य कुथुसागर ग्रन्थमाला, सोलापुर



श्रीपरमपूज्य, पूज्यशरद, प्रातःस्मरणीय, जगद्गुरु, जगद्गुरुद्वारक,
नरेन्द्रपूज्य, व्याख्यानवाचस्पति, कविवर्य,
वादीमकेसरी, विद्वच्छिरामणि,
आचार्यवर्य १०८ श्रीकुन्जुसागरजी महाराज

“ भूमिका ”

इस परिवर्तनशील ससारमें प्रतिदिन निरंतर प्रायेक मानवको
 लिए “ आया कहासे, जाना कहा और करना क्या ”
 इन तीन बातोंपर विचार करनेकी परम आवश्यकता है । दो सौ
 पचास वर्ष पहिलेका कोई भी मनुष्य आजकल दृष्टिगोचर नहीं
 होता है । इससे यह निष्कप निकलता किं सब मानव लये जाकर
 इस ससाररूपी सारापने बसे हैं । जब किसी अल्प स्थानसे जाना
 सिद्ध हुआ तो जाना भी एक दिन अवश्य होगा । आया जरूर
 जाना भी जरूर और करना भी जरूर है । संस्कार करो या
 या दुस्कार करा । जानेके लिए पांच ही स्थान हैं याने गति हैं,
 मरकगति, पशुगति, मनुष्यगति, देवगति और पाचवीं अतिम
 मोक्षगति है । इनके सिवाय और छठी कोई गति नहीं है । प्रायु
 निक काष्ठमें मनुष्य भी सवासो बरससे अधिक नहीं रह सकता
 है । सदाके लिए न कोई रहा और न रहगा । सब सशक्ति, राग्य,
 वैभव, इष्टमित्रादिक और कुटुंबवर्गका समागम विपुल वेगके समान
 या लड़के बुद्धुदा समान क्षणमगुर जानो । करनीका फल अवश्य
 भोगना ही पड़ेगा । भागे बिना कमी छुटकारा नहीं होगा । इसलिये
 प्रायेक मानवको कर्तव्यपरायण बनकर, इस भूतलके उपर ऐसे
 ऐसे अर्थोक्तिक कार्य करना चाहिए जिससे कोई भी मनुष्य भूखा
 न मरे । अलहीनको अन्न दना, बलहीनको बल देना, स्थान
 अलको स्थान दना । किसीकी निंदा, बुलाई, तिरस्कार, अनमान
 आदि न करेना यही सर्वरमोंका सार है । इसके बिना जीवन भी
 मरणतुल्य है । मानवजीवनकी शोभा इस भूतलपर देश विदेश
 काठे गोरे आदिके भदको सर्वथा छोड़कर प्राणिमात्रके हित

वेतन करनेसे, उनके साथ प्रेम बजानेसे ही होगी। केवल अपने कुटुम्बका पालन करना मनुष्यता नहीं होगी। यह तो पशुवृत्तिका विषय देना है। क्यों कि पशु भी अपने कुटुम्बका पालन करते हैं। इसमें कोई विशयता नहीं। साकार्योंके द्वारा ही मनुष्य अपने जीवनको उन्नत और विकासमय बना सकता है।

जीवोंकी हिसा करनेसे नरक आयुका बध होता है, कुटिल और अशुभ परिणामोंसे पशु पर्याय का बर होता है। और शुभाशुभ मिश्रित मावोंसे मनुष्य आयुका बध होता है। और परोपकार परिणतिरूप शुभभावोंसे देव आयुका बध होता है। इस प्रकार आत्मज्ञानरहित ससारी जात आयु कर्मका बध करते हैं। ससारमें परिभ्रमण कराने वाले और अतिशय दुःखको देनेवाले आयु कर्मका बध प्रायः मोहसे होता है। इसप्रकार ऊपर कहे हुए भावोंसे रहित जात है, वह किसी समय भी कर्मोंका बध नहीं करता है।

इस समयमें आचार्यश्रीने वास्तविकतासे विश्वप्रेम और विश्व कल्याणकी भावना प्रदर्शित कर ससारको सन्धी शांति और सच्चा सुख प्राप्त करनेका मार्ग बतलाया है। यह प्रयत्न कोर जाति, कौम्य समाज विशेषको लक्ष्य करके नहीं लिखा गया है, किन्तु मानवमात्रके हितके लिए “उद्युबोधः(मृसार)” नामक अनुपम प्रथकारचना की। ससारमें ऐसे सद्गुरु और महत्माओंका नाशन केवल जगत्कल्याणके लिए ही होता है। अतः ऐसे निःस्वार्थ परोपकारी, विश्वोद्धारक महत्माका सपूर्ण प्राणियोंको कृतज्ञ होना चाहिए। इसमें मानव जीवनका सफरता है।

गुरुचरणसरोजचक्रक—

संजनसाल जैन पोस्टल आफिसियल रतनाम,

••• अथ कर्त्तृका परिचय •••



महर्षि प्रातः स्मरणाय आचार्य ब्राह्मण्युसागरजी महाराजन् इस प्रयत्नका रचना का है । आप एक परम प्रभावक बीतरागी, विद्वान् आचार्य हैं । आपकी जन्मभूमि कर्णाटक प्रांत है जिस पूर्वमें कितन ही महर्षियोंने अछकृण कर जैनधर्मका मुख उज्ज्वल किया था । इसलिये “ कर्णेण अटतीति ” सार्थक नामको पाकर सबक कानोंमें गूज रहा है ।

कर्णाटक प्रांतके एरर्यभूत बल्लगवि जिल्लेमें रेनापुर नामक सुंदर नगर है । वहांपर चतुर्थशुद्धमें छद्मभूत अत्यंत शक्ति स्वभाववाले सातप्पा नामक आचकात्म रहत थे । आपकी धर्म पत्नी साक्षात् सरस्वतीके समान सद्गुणसम्पन्न था । इसलिये सरस्वतीके नामसे ही प्रसिद्ध थी । सातप्पा व सरस्वती दोनों अत्यंत प्रेम व सत्साहस दक्षिणा व गुणपाणि आदि सत्कामों सदा मग्न रहते थे । धर्मकार्यका व प्रबानकार्य समझते थे । उनका हृदय में आंगरिक धार्मिक श्रद्धा थी । आमती ही सरस्वतीज सवत् २४२० में एक पुत्ररानको जन्म दिया । इस पुत्रका जन्म कार्तिक शुक्लपक्षका द्वितीयाका हुआ । मातापिताओंने पुत्रका जावन सुसंस्कृत हा दम सुविचारस जन्मस ही आगमक सत्कारोंसे सत्कृत किया । जातकर्म सत्कार हानके बाद शुभमुहूर्तमें नामकरण सत्कार किया जिसमें इस पुत्रका नाम रामचन्द्र रखा गया । बादमें श्रीकर्म, अश्वराम्याम, पुस्तकमहण आदि आदि सत्कारोंसे सत्कृत कर सद्दिशाका अध्ययन कराया । रामचन्द्रके हृदयमें बाळकाठसे ही विनय, शाळ व सद्बोध आदि भाव

जागृत हुए थे । जिसे देखकर हाग आश्चर्ययुक्त व सतुष्ट हात थे । रामचंद्रको बाल्यावस्थामें ही साधु सयकियोंके दशनमें ठाकट इच्छा रहता था । काइ साधु ऐनापुरमें जात तो यह बाळक दोट कर उत्तका वदनाक लिए पडुचाता था । बाल्यकाळसे ही, इसक हृदयमें धमक प्रति अमिहृचि थी । सदा अपन सदधर्मियोंके साथ तत्त्वचर्चा करनमें ही समय बिताता था । इन् प्रकार सोठह वर्ष ब्यतात हुए । अब माता पितापिताओंन रामचंद्रको विवाह काने का विचार प्रगट किया । नैसर्गिक गुणस प्ररित हाकर रामचंद्रन विवाहके लिए निषेध किया एव प्रार्थना का कि पिताजा ! इस लौकिक विवाहसे मुझे सतोष नहीं होगा । मैं अलौकिक विवाह अर्थात् मुक्तिदृशनीक साथ विवाह कर लेना चाहता हू । मातापितावाने पुत्रस आमह किया । मातापिताओंकी आज्ञोच्छघनभवसे इच्छा न हात हुए भी रामचंद्रने विवाहकी स्वाइति दी । मातापिताओंने विवाह किया । रामचंद्रको अनुभव होता था कि मैं विवाह कर बट बधनमें पड गया हू ।

विशेष विषय यह है कि बाल्यकाळस सरकारोंसे सुदड होने के कारण यौवनावस्थामें भी रामचंद्रको कोई ब्यसन ' नहीं था । ब्यसन था तो कषळ धमचर्चा, सासगति व शास्त्रस्थाप्यापका था । बाकी ब्यसन ता उससे घबराकर दूर भागत थे । इस प्रकार पश्चीस-वष पर्यंत रामचंद्रन किसी तरह घरमें वास किया । परंतु श्रीचवाचमें यह भावना जागृत हाती थी कि भगवन् ! मैं इन् गृहबन्धनमें कष हूटू ? जिनदीक्षा लेनेका माग्य कब मिडेगा, ? अबह दिन कब मिडेगा जब कि सवसगपरिषागकर मैं स्वपरक कषाण कर सकू ?

देववशात् इस बीचमें मातापिताओंका स्वर्गवास हुआ । विक-
राज काळकी कृपासे माई और बहिनमें भा विदा थी । तब
रामचन्द्रजीका विषय और भी उदास हुआ । उनका बधन छूट
गया । तब सप्तारकी अस्थिरताका उद्दोष स्वानुभवसे पक्का निश्चय
करके और भी धर्ममागपर स्थिर हुए ।

रामचन्द्रक स्वसुर भी धनिक थे । उनके पास बहुत संपत्ति
थी । परन्तु उनके कोई सगान नहीं था । व रामचन्द्रसे कई दफ
कहते थे कि यह संपत्ति (घर बगैरह) तुम ही छ छा, मेरे पहा
क सब फारोवार तुम ही चलावा । और रामचन्द्र अपने स्वसुरको
दुःख न हो इस विचारसे कुछ दिन रहा भी । परन्तु मनमनमें
यह विचार किया करता था कि “ मैं अपना भी घरदार छाटना
चाहता हूँ । इनकी संपत्तिको लेकर मैं क्या करूँ ” । रामचन्द्रकी
इस प्रकारकी वृत्तिसे स्वसुरका दुःख जाता था । परन्तु रामचन्द्र
जाचार था । जब उसने सर्वथा गृहत्याग करनेका निश्चय ही
कर लिया तो उनके स्वसुरको बहुत अधिक दुःख हुआ ।

आपने श्रीपरमपूज्य आचार्य श्री शक्तिसागर महाराजक पाद
मूलको पाकर अपने सङ्कटको पूर्ण किया । सन् २५ में अथवा
बेळगाणके मस्तकामिवेकके समय पर आने झुल्लक दीक्षा थी व
सोनागिर श्रवणर मुनिदाक्षा थी । और मुनि कुयुसागरक नामसे
प्रसिद्ध हुए । जब आप घर छोड़ करके साधु हुए तब आपकी
धर्मपत्नी धर्मध्यान करती हुई घरमें ही रहा ।

आपने अपनी झुल्लकाय एक अवस्थामें बहुगुहा धर्मममा-
ननुक कार्य किये हैं । सत्कारोंके, प्रसारके लिये सतत प्रयाग

किया है । आपने मुझे अवस्थामें उत्तरप्रांतके अनेक स्थानोंमें विहार कर घर्मकी जागृति की है । गुजरात व बागड प्रांत जा कि चारित्र व समयका दृष्टि बहुत ही पीछ पडा था, उस प्रांतमें छोटे छोटे गाँवमें मा विहार कर लोगोंको घर्ममें स्थिर किया है ।

आपमें स्वपरकल्याणकारा निर्मल ज्ञान हानके कारण आप सर्वज्ञत्व हुए हैं । आपकी जिस प्रकार प्रवचन कलामें विशेष गति है, उसा प्रकार वस्तुस्थलामें मा आपका दयाति है । आताओंक हृदयका आकषण करनेका प्रकार, वस्तुस्थितिको निरूपण कर मध्योंका सत्तारस तिरस्कार विचार उत्पन्न करानका प्रकार आपका अष्टी तरह अवगत है । आपके गुण, सपम आदियोंका देखनेपर यह कहे हुए बिना नही रह सकत कि आचार्य शतिसागरजी महाराजने आपका नाम कुमुदागर बहुत सोच समझकर रक्खा है ।

आपन अपनी माता सरस्वताका नाम साधक बनाया है । क्योंकि आप अपने नाम तथा काममें सरस्वतापुत्र ही सिद्ध हुए हैं । चतुर्विंशतिभिन्नस्तुति, शतिसागर चरित्र, बोधामृतसार, निजाम शुद्धिमावना, -मोक्षमार्गप्रदाय, ज्ञानामृतसार, स्वल्पदर्शनसूर्य, नर शघर्मदर्पण मनुष्यकृप्यसार, शतिसुधासिंधु आदि नीतिपूण तत्त्वग-र्मित १० प्रवचनोंका उत्पत्ति आपके ही अगाधज्ञानरूपी त्वातसे हुई है, हा रही है और होती रहेगी ।

आपके दुर्लभ संस्कृतमाया-पांडित्यपर बडे २ विद्वान् पंडित भा मुख हो जाते हैं । आपका प्रथनिर्माणशैला अपूर्व है । वर्णन-कौशल्य निराळा है । आगम विषयोंको आधुनिक ढंगसे

स्पष्टीकरण करनेमें आप सिद्धदर्शन हैं । आपकी भाषण-प्रतिभा, शांत व गभीर मुद्राके सामने बड़े २ राजाओंके मस्तक झुकते हैं । गुजरात प्रांतके प्रायः सभी सत्थानाधिपति आपके अडाधारी शिष्य बने हुए हैं । अबतक हजारोंका सङ्घामें जैनतर आपके, सद्गुणदशधे प्रभावित होकर मकारप्रय (मघ, मांस, मदिरा) के नियमी व यमी बन चुके हैं । गुजरात व बागड प्रांतमें आपके द्वारा ज धर्मप्रभावना हुई है व हो रही है वह इतिहासके पृष्ठोंपर सुवर्णवर्णोंमें त्रिरंकाळतक अंकित रहगी । गुजरातमें कई सत्थानिकोंने अपने राज्यमें इन तपोवनके ज मदिनके स्मरणार्थ सार्वजनिक छुट्टी व सार्वत्रिक अड़िसादिन मनानेके कर्मान निकाले हैं । सुशासन स्टटके प्रभावसम्बन्ध नरेश तो इतने मत्त बन गये हैं कि महागजका जहा २ विहार दाता है वहां प्रायः उनकी उपस्थिति रहती है । कमी अनिवार्य राज्यकार्यसे परवश हाकर महाराजस विदा, छेनका प्रसंग आनवर माताको निष्ठुडने हुए पुत्रके समान नरेशकी आँवोंमेंसे आँसु बहते हैं । घ व है ऐसी गुहमक्ति ! युवराज कुमार सादेव रणजीतसिंहकी पूज्यश्रीके परमभक्त हैं । वे कई समय महाराजकी सभामें उपस्थित होकर अस्मदितके तर्कोंको पृच्छत हुए महाराजकी सेवामें ही दीर्घ समय ह्यतीत करते हैं । तारगजास महाराजका विद्वान् डॉनका समाधार जानकर कुमार सादेवसे रहा नहीं गया, व पूज्यश्रीके नरणोंमें उपस्थित होकर (अश्रुगत करने हुए) महाराजमें निवेदन करते हैं कि स्वामिन् ! पुन कव दशन, मिळगा ? कितनी अद्भुतमक्ति है यह ! पूज्यश्रीने आज गुजरातमें जो धर्ममार्गति की है वह “ न भूतो न भविष्यति, ” है । गुजरातमें जैन क्या, जेनेतर

या, हिंदू, क्या, मुसलमान क्या, उनके चरणोंके मऊ हैं । और
उपश्रीका स्थान बहुत ऊँचा है । लखवा, माणिकपुर, वेधापुर,
हारपुर, बांसवाड़ा खांदु आदि अनेक राज्योंके अरिपति आपके
सद्गुणोंसे मुग्न हैं । पिछे दिन बढोदा राज्यमें आपका अपूर्व
स्वागत हुआ । राज्यके व्यापमदिरमें स्टेटके प्रधान सर कृष्णमा
चारीकी उपस्थितिमें आचार्यश्रीका सार्वजनिक तबोपदेश हुआ ।

आप मगवान् समतमद जिनसेनादिका स्मरण दिखते हैं ।
जो छोकोपकारका कार्य महर्षि कुदकुद, प्रभाचद अरुलक, मेमि
चद सिद्धांत चक्रवर्ती आदिने किया था वह इस समय अपने
आचार्य कुथुसागरजा महाराज कर रहे रहे हैं । इस समय आपके
द्वारा धाम्बर प्रातमें जो चेतना हुई है वह आशातीत है । इस पिछे
द्वारा प्रातमें बीसों वर्षोंमें होनेवायक सुगर कुठ महिनोमें होगया है ।
ऐसे महर्षिभूतियोंसे ही धमका मुग्न उग्वळ होता है । ऐसे प्रात
स्मरणोंव पूज्य महर्षिक चरणोंमें त्रिकाळ अनगत नमोस्तु है ।

प्रकृत प्रथ लघुबोधाभूतसार जा आपके समक्ष है, पूज्य
आचार्यश्रीके द्वारा विरचित है ।

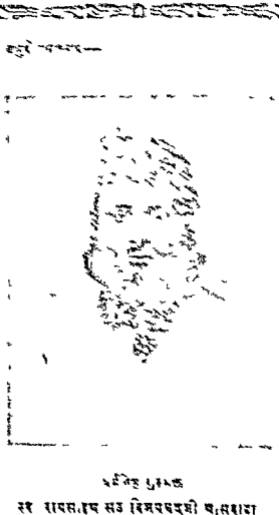
ग्रन्थ-परिचय

यह लघु-बोधाभूतसार नामक १० श्लोकोंका छोटासा
प्रथ-सांसारिक चतुर्गति और अंतिम निर्वाणगतिकी वास्तविकता
तथा जीवका कतअ्य जाननेके लिए महान् उपयोगी है । अत
सपूर्ण मनुष्य समाजके लिए अध्ययन और मनन करने योग्य है ।
इसका अनुभव कर यह जीव पंचमगति [मोक्ष] प्राप्त कर सकता है ।

निर्भीत-गुरुचरण सेवक-वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मन्त्री-श्रीआचार्य कुथुसागरप्रथमाया

विद्यया ऽमृतमश्नुते



विद्यया ऽमृतमश्नुते

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

बुधबोधामृतसार—



श्रीमती धमचद्रिका
जटावर्धनी यासवाटा

द्वितीय आवृत्तिके प्रकाशक

धर्मरत्न, समाजभूषण, सेठ मोतीचंदजी सरियाका

साक्षिप्त परिचय ।



सेठ मुकुंदजी धनराजजीके पवित्र वंशमें सेठ चंपादादाका कुटुंबीयक पुत्र राय—साहिब विजयचंदजी गण्यमान व्यक्ति होगय है । आप सांसदादा स्टेट व वायवर प्रांतक भूषण थे । धीरता धीरता और धार्मिकता आदिमें वे ख्यातिप्राप्त व्यक्ति थे । राज्यमें भी आप सम्मानित सेठ थे । भारत सरकारने आपको “ राय—साहिब ” का पदवी प्रदान की थी । आपन सवत् १९७६ में २७०००) का दान कर बडिंग स्थापित की थी जो कि आपके जीवन कालमें अच्छा कार्य करती रही । आपने अपने जीवन कालमें इस चंचलदरमीका कई प्रकारसे अपने हाथों लाखों रुपयोंका दान किया ।

सांद्रु राज्यमें होनेवाली दशहरेका हिसा [१०६ मेंसोंक वार्षिक वरको] हजारों रुपये खर्च करके आपने बंद करवा दी है । इसक लखावा आपन और १२ गांवोंमें भी कई जीवोंकी हिसा सनाके लिए बंद करवाई है ।

सारांश यह कि बट बट धार्मिक, सामाजिक और राजकीय कार्योंमें आपका पूरा सहयोग रहता था । ऐसे नरपुंगव सेठ विजयचंदजीके सुपुत्र सेठ मोतीचंदजी सरिया हैं ।

अपका जन्म ३१७ शुक्ल ८ वी सवत् १९६८ में हुआ है । १३ वर्षकी अवस्थामें ही आपको निवृत्तमते वचित रह जाना

पदा, उस समय आपके छोटे माई महीपाठनीकी अवस्था ९ वर्षकी थी ।

आपकी सुयोग्य, नीति-परायण, धर्मचद्रिका माता जदाव माईजीने आपके छाजन, पाठन व शिक्षणका सुप्रबध रक्खा । तथा स्टट व गृहस्थी का सम्हाल भी मुनीम आदिके सहयोगसे करने लगी । फिर भी छाटी अवस्थासे ही सेठ मोतीचदजीको गृहस्थीका मार चठाना पदा ।

जिस प्रकार शीरता, धीरता आदिका प्रतिबिम्ब आपपर आप के पिताका था, उसी प्रकार धार्मिकता, आदि कई गुणोंका प्रभाव आपपर माताका था ।

आपकी मातुश्री धर्मचद्रिका जदावमाईजी श्रावकके गुणोंसे परिपूर्ण पूजा, स्वाध्याय, सामायिक, धर्मचर्चा आदि धार्मिक कार्योंमें सदा तत्पर और सावधान रहती हैं । आपकी धार्मिक ज्ञान भी अच्छा है । आप अपना शुद्ध मोहन अति साधुधानी-पूर्वक अलग ही बनाती है और उदासीन वृत्तिसे रहती है ।

ऐसी सुयोग्य माताका सेठ सा. पर मारी प्रभाव है और आप हैं श्री मके बड़े ही आझाकारी पुत्र ।

गत वर्ष बालुवाडामें महाराज कुशुसागरजीका जो चातुर्मास हुआ उसका प्रधान अथ सेठ साहिबको ही है । चातुर्मासमें सचकी जो पैयानृत्ति और व्याख्यान आदि करानेका जो सुप्रबध आपने किया वह अति प्रशस्तनीय है । आपने महाराजके उप देशोत्त प्रभावित हाकर समाज व धर्मसेवाके लिए अपनी शक्ति लगादी है ।

दुष्कृतसंसार—



श्री धर्मनिष्ठ गुरुमठ
सह मातीश्वरी सरिया, यासबादा

उपरोधानुसार —



श्री धमनिष्ठ गुडपत
सद महीशाहजो सरिया, वांसवाटा

दिगंबर जैन बार्डिंग बासवादा
या पुन अछे रूपमे चाछ

इकरममें भी आपको प्रधान ध्येय है ।
इका मा आपने एकमुत्त ५००१)
इस तरह साधारणक सचादन
(२००००) रु कादान कर चुक है
आप वाग्धर प्रातके सटारमे कर रहे
आप प्रतिदिन कुछ न कुछ साचा

ममें जो सेवक मदक तैयार हुए है
ही कार्य है । आप एक आगृत
आपका सासाह अपार है, जिस कार्य
छोडते हैं । आप इस प्रातके जमकते
उ व्यक्ति उन्हें सहयोगी मिळ जाय
हो सकता है ।

न भी बहुत ही सरस, सरळ, सादा,
गुणमाहकता गुण मविश्वमे उ हें
कर सकता है ।

मेडिक तक ही हुई है, किर भा
। इसासे आप इस समय निम्न
हाक रहे हैं—

अधुना धामतसार —



श्री धमनिष्ठ गुरुमठ,
सद महीपाछजो सरिया, धांसवादा

आ सट चपाचल बिनपचद दिगबर जैन बार्दिग बासवाडा जो अन्यवरियत दगपर खल रहा या पुन कच्छे रूपमें चाल कर दिया है ।

क पाशाटाको सचावित करनमें भी आपको प्रधान धेय है ।

कुथुसागर स्काटर्शिप पदका मी आपन एकमुत्त ५००१) रु प्रदान कर चालू किया है । इस तरह सभाओंक सचावन आदिमें आप गत वर्ष लगभग २००००) रु कादान कर चुक हैं और सबसे बडा कार्य तो आप वाग्बर प्रा तके सदारमें कर रहे हैं । प्रा तके उद्धारक टिप आप प्रतिदिन कुछ न कुछ साचा करते हैं । किया करत है ।

वाग्बर प्रातके प्राम प्राममें जो सेवक मडळ तैपार हुए हैं उनमें जागृति लाना आपका ही कार्य है । आप एक धागृत कर्मठ और धनी युवक हैं । आपका बसाह अपार है, जिस कार्य में भिड जाय उस करक ही छोडते हैं । आप इस प्रातके चमकते छितारे हैं । यदि ऐसे ही कुछ व्यक्ति उ हें सहयोगी मिळ जाय तो प्रा तमें आशातात सुधार हो सकता है ।

आपका व्यक्तिगत जीवन भी बहुत ही सरस, सरल, सादा, व्यवहारपटु और मिलनसार है, गुणप्राहकता गुण मविष्यमें उ हें बहुत ही उच्च पदपर आसीन कर सकता है ।

आपकी शिक्षा हिंदीमें मिडिल तक ही हुई है, फिर मायावता और प्रणिभा अगार है । इससे आप इस समय निम्न सरयाओंक समागति पदका सहाय रहे हैं—

श्री वाग्भर प्रातीय दि जैन समा वासवाडा

११ वाग्भर प्रा ताप दि जैन महामठळ ११

११ दि जैन महानीर मठळ ११

११ वाग्भर प्रातीय दि जैन कुथुसागर

स्काळशिप फड वासवाडा

११ कुथुसागर जैन क या पाठशाळा ११

११ रावसाहब सेठ सरिया चम्पाळाळ

विजयचद बाईंग हाऊस ११

तथा वासवाडा स्टेटके साप बेकर भी हे ।

आपने अपने थोडेस भावन काळमे ही निम्न उल्लिखित महान धार्मिक काय किये है—

(१) ऋषभदेव मंदिरमें स्वजादद आपने नया सब कार्य करक चढाया ।

(२) वाग्भर प्रान्तमें सिद्धचक्र विधान दो वक्त बडे ही लालस से हजारो आदमियोंको एकत्र कर किया है, सिद्धचक्र विधानको मदिमा इस प्रा तमें सभ प्रथम प्रकारकी ।

(३) घरपर बने जेत्पाळयका वेदी प्रतिष्ठा ।

(४) नरसिंहपुरा मंदिर वासवाडाका नीर्णोद्धार ५ पच कल्याणक प्रतिष्ठा

(५) कल्याणपुर [कुवाळा] मंदिरका पचकल्याण प्रतिष्ठा

(६) फाल्गुन शुक्ल ३ वीर स २४७१में कळोना मंदिर का होनेवाळा पचकल्याणक प्रतिष्ठाका भार मा आप ही प्रमानतथा समासेंग ।

आगे श्री सेठ ने वि. वि. जैन बोर्डिंग वासुदेव डाका भुव
 षड बढाकर गत वर्ष २,८०००) का कर दिया है।

उपयुक्त कार्याक उपलब्धमें समानने आपको " धर्मरत्न व
 समाजभूषण " के पदमें अलङ्कृत किया है और आपका माताको
 धर्मचन्द्रिकापत्रमें विभूषित किया है।

आपके छोटे भाई महापाण्डवा सराया भा. शरक कायोगि
 सहायक दत्त रहत हैं। इससे अपनी बडा भाग स्ट्रका प्रवा
 दुकानोंका संचालन उत्तम रीतिस करते हुए भी सामाजिक और
 धार्मिक कार्योंमें अग्रसर रहते हैं। आप दोनों भाई राम छ मणक
 समान बडे प्रेमस रहत हैं।

आपके इस समय ३ सतान [२ पुत्रियां और १ पुत्र है]
 बडा सुपुत्रीका नाम ' रमणकाता ' व उाटाका ' गुणसुंदरी '
 व पुत्रका नाम ' हरिश्चंद्र ' है। सतानकी शिक्षाका व्याप पूरा
 ध्यान रखते हैं।

सारांश यह है कि आप एक विशेष पुरुष हैं जिनसे समान
 का कई आशयें हैं।

आपने परमशुभ परम तपानिधि विरवधय विद्वन्मिष्टगोमाण,
 नरेन्द्रवध, चात्रि चूडामणि आचार्य १०८ बुधुसागरजी महाराज
 के प्रथ " लघुबोधामृतसार " की द्वितीय आवृत्ताक प्रकाशनका
 ज्ञा मार किया है वइ आपकी गृहमल्लिके अनुरूप ही है अथ
 महाशयोका आपका अनुकरण करना चाहिए।

गुणानुयागी—

जवाहरलाल जैन वासुदेव

चित्र-परिचय ।

— ० [~~~~~] ० —

श्री रा सा सेठ विजयसिंहजी यासबादा.

आप वाग्बर प्रांतके एक चमकते हुए नररत्न हुए हैं । आप का सार्वजनिक व राजकीय क्षेत्रमें बहुत बड़ा प्रभाव था । आप दानवीरताके लिए प्रसिद्ध थे ।

श्रीमती धर्मचद्रिका जटावबाईजी—

आप स्व सेठ विजयचदजीकी पत्नी व सेठ मोतीचदजी सरियाकी माता हैं । आप धर्मप्रमी, गुरुभक्ता हैं । चातुर्मासके समय आपने आचार्यसचकी अपूर्व सेवा की ।

श्री सेठ मोतीचदजी सरिया—

वाग्बर प्रांतके धर्मवीर युवकरत्न व सेठ विजयचदजीके विनयशाली ज्येष्ठपुत्र हैं । धर्मकार्यमें सदा अग्रगण्य रहते हैं । अनेक सस्थाओंके सचिवक हैं । दानकार्यमें भी अपने पिताका अनुकरण करते हैं ।

श्री सेठ महीपालजी सरिया—

सेठ मोतीचदजीके ज्येष्ठपुत्र, धर्मप्रमी और गुरुभक्त हैं । अपने भाईके समान ही सदा धर्म व समाजकार्य में भाग लेते हैं, उत्साही नवयुवक हैं । मिष्ठानसार हैं ।

आपका समस्त परिवार सुखसमृद्धिसे समृद्ध हो यह हमारी भावना है ।

२११

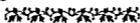
वर्षमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मन्त्रा-आचार्य पुथुसागर मधमाला

॥ श्रीश्रीनाराणाय नमः ॥

विश्ववंश श्रीमदाचार्यकुन्थुसागरविरचित

लघुबोधामृतसार ।



मंगलाचरण

ज्ञानभानु जिन नत्वा, श्रीद स्वर्माक्षदायकम् ।

लघुबोधामृत सार, वक्ष्ये सद्बोधहेतवे ॥ १ ॥

संस्कृतार्थः—सुज्ञानमूर्ध्वं बीतरागपरमदेव भगवा सकलैश्वर्य
प्रायस्कमश्रुदयनिघ्नैवससाधकम् लघुबोधामृतसार मन्वाना बोधहेतवे
वये इति प्रतिज्ञा करोःवाचार्य ॥ १ ॥

THE AUSPICIOUS PRAYER

Having bowed to Jina [God], the sun of knowledge, who gives wealth and final beatitude I (Kunthūsaḡar) tell a short essence of nectar of advice to enable the good for its achievement (1)

अर्थ — सुज्ञानमूर्ध्वं बीतराग परमदेव भगवतको नमस्कार कर आचार्य ग्रय-निर्माणकी प्रतिज्ञा करते हैं ।

कुत्रागतोऽहं गमनीयमस्ति, कुन सदा किं करणीयमेव ॥
ससारवृत्तांतचिदा नरण, सदैव चित्ते म्रच्छ चिंतनीय ॥२॥

संस्कृतार्थः—स्वपरहितमभिप्राशुन मवभ्रमणदु खमनुमवन्
सयइमामहितैपिणा एव चिंतनीयम्, अहं कुत्रागत, केन भवेनाहं
मगागत, कुत्र च गमनीयमस्ति, क गतौ गमनायमस्ति, अत्र च मनुष्य
मये किं कर्तव्यमस्ति ॥ २ ॥

Where have I come where I am to go, what is

worth to be done a learned man should always consider these matters regarding the world (2)

अर्थ—अपन हितको चाहनेवाले मनुष्यको प्रतिनित्व में कहाँसे आया हूँ, कहाँ जाना है और यहाँपर मेरा कर्तव्य क्या है ? इत्यादि विषयोंका विचार अवश्य करना चाहिए ।

इस ससारमें समस्त भोगोंपभोग पदार्थ नाशशील हैं । इष्टविभोग अनिष्टसंयोग का सन्ध इस आत्माका प्रतिसमयमें होता रहता है । जब कि पदखटवैभवभोगी चक्रवर्तिकी अखण्ड संपत्ति, अ-पदुर्लभ श्रीतीर्थकरपरमेष्ठीकी विभूतियाँ, और यलभद्रादि महापुरुषोंके सर्व वैभव भी नाशशील हैं, फिर हम लोगोंकी नश्वरसंपत्तिका तो कहना ही क्या है ? क्या वह स्थिर रह सकती है ? प्रातःकालमें सुखसे स्थित मनुष्य शाम को मरणोन्मुख होता है । सबरे पुत्रजन्मसहस्रास्तुभी मनानेवाले मनुष्य दुपहरको पुत्रविषागसहस्रसमूहमें गीते छगाते रहते हैं । यह जीवन जलधुदुदके समान है । परन्तु यह प्राणी इसके रहस्यको न समझकर मोह और अज्ञानके वशीभूत होकर यह शरीर, जीवन, पुत्रपित्रादिबांधव और समस्त संपत्तिको स्थिर समझकर इस ससारमें परिभ्रमण करता रहता है ।

यह मनुष्य पर्याय ही सब पर्यायोंमें श्रेष्ठ है । इसी भवमें आकर यह जीव अपने शुभाशुभकर्मानुसार जिस तरह नरक, तीर्थ, मनुष्य और देवतियोंका टिकेट छता है, उसी तरह संपूर्ण कर्मोंको नाश करके शिवपदको भी प्राप्त कर सकता है । परंतु ये सब इस मनुष्यक कर्तव्य और भावनापर निर्भर है ।

भो गुरो ! कीदृशो जीवो नरक याति सत्वरम् ?

Question—Oh I preceptor I tell me which being goes to hell ?

प्रश्न—हं गुण । केसा जीव एतत् द्वी नरकं गच्छता इ ?

अत्यन्तपापी कटुकप्रभाषा, धर्मस्य द्रव्यस्य गुरोर्विरोधी ।
 धूर्त शठ पाणिषथ मृत्ता, द्रोहो च यथा कुलजानिलापो
 दानादिधर्मेषु सदा रतानां, सुभाषकाणां गन्तुं निन्दको य ।
 पूर्वोक्तभावेरिति यद्य युक्तः, स एव पापी नरकस्य गार्भी

संस्कारार्थः — तावत्तथाप्युक्तं, कटारथचमप्रपाका, देवस्य तथा
 इत्येतिषावकादिषाधर्मस्य गुणद्वयनिन्दक, धूर्त, पराधारे निरतशठ,
 इत्यादि कथे मृत्त, विषय, स्वर्गवसानां दाही, स्वेष्याचारमात्र
 एव कुलजातिमर्षादोषक, समाप्तानन्देवब्रह्मसिद्धयर्थेषु रतानां
 मन्थार्थं सदा दूषका, पापा तीव्र द्रुमकर्मोदपातनिमित्तन अधगति
 यति ० ३-४ ॥

That sinful man goes to hell who at once becomes angry who speaks bitter words who objects to religion, God and the preceptor who is a cunning rogue who is inclined to kill animals, who is treacherous to his fellowmen and who wants to destroy the family and the caste and who always reproaches the good householders who take interest in duties such as giving donation etc. and the one who possesses bad feelings in his mind as a mentioned above (3-4)

अथ—जो अत्यन्त पापी है, कटुक भाषण करनेवाला है जो द्रव्य, धर्म और गुरुका विरोधी है, जो धूर्त है, मूर्ख है, पाणिषोकी दिग्गमे सदा मृत्त रहता है, जो भयन भाई बहुत मोहो द्रोहो है, जो कुछ और भाविका छोप करनेवाला है और

जो दान पूजा आदि धर्ममें सदा खीन रहनेवाले श्रेष्ठ श्रावकों को सदा निंदा करता रहता है, जिस जीवके ऊपर लिख हुए भाव विद्यमान रहत हैं वहा जीव पापी और नरकगामी समझना चाहिए ।

प्रश्न—कितने वर्षोंतक जीव नरकगतिमें रहता है ?

उत्तर—बृहस्पति ३३ सागरवर्ष पर्यंत, शक्यं दस हजार वर्ष पर्यंत और मध्यम अपनी स्थितिके अनुसार अर्थात् दस हजार वर्षोंसे लेकर अन्तर्दुर्हर्षिभागक्रमसे तैतीस सागर वर्ष पर्यंत अपनी २ स्थितिके अनुसार वहापर रहता है ।

प्रश्न—कोटाकोटा किस कहत है ?

उत्तर—एक कोटीसे एक काटीको गुणाकार करनेपर जो लब्ध आता है उसे कोटाकोटी कहत है ।

प्रश्न—सागर किसे कहत है ?

उत्तर—दस कोटाकोटी अद्धारपत्यको सागर कहते हैं ।

प्रश्न—अद्धारपत्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—दो हजार कोश गहरे और दस हजार कोश चौड़े गोळ गड्ढमें किन्नीसे जिसका दूसरा भाग न हो सक ऐसे मंडिके बालोंको भरना । जितने बाल छममें समावे, उतनेसे एक एक बालको सौ सौ वर्ष बाद निकालना । जितन वर्षोंमें वे सब बाल निकल जावे, उतने वर्षोंके जितन समय हो उसका व्यवहारपत्य कहते हैं । व्यवहारपत्यसे असंख्यात गुणा उद्धारपत्य होता है । उद्धारपत्यसे असंख्यात गुणा अद्धारपत्य होता है ।

प्रश्न—नरकगतिमें किस तरह दुःख भोगना पडता है ?

उत्तर—नरकमें रहनेवाले नारकी जीव सदा अशुभतर

कियावाले, अशुभतर परिणामवाले, अशुभतर देहक धारक अशुभतर वेदनावाले और अशुभतर विक्रिया करनेवाले होते हैं। निरन्तर अशुभकर्मका उदय रहनेके कारण उनका परिणाम आदि सदा अशुभ ही रहत है। नारकी जीव परस्पर कुत्तोंकी तरह निरन्तर लड़ते झगड़ते रहत हैं और अर्थावरोप भातिके संहिष्ट परिणामवाले अमुरोंक द्वारा भी दुःखी किये जात हैं अर्थात् जिस प्रकार लोकमें उनका अज्ञानी पुरुष मूढ़, भैंस हाथियोंको मद्य पिछाकर परस्पर लड़ात हैं और उनकी टार-प्रीतस आनन्द मानते हैं वा तमाशा देखते हैं। उसी प्रकार तीसरे नरक तकके नारकी जाबोका हृष्ट कान्तुकी देव अवधि ज्ञानस उनके पूर्व वैरोंका स्मरण कराकर परस्पर लड़ाते तथा दुःखित करते रहते हैं और आप तमाशा देखत हैं और भी अनेक प्रकारक दुःख होते हैं।

त्रियम्गति च को जीवो गुरो ! गच्छति भा घद ?

Question Oh Preceptor ! Tell me which being goes to the organic world ?

प्रश्न—हे गुरा ! यह वतच्छाश्य कि त्रियंजगति में कौनसा जाय जाता है।

आचारहीना हि विचारशून्या मिथ्याप्रलापो च बहुप्रमादी
अभक्ष्यभक्षी विपरितृप्तैर्बह्वभभाजी निज र्मयाद्य ॥
दभी च लोभी विपद्ये निमग्ना, दानादिधर्माद्धि सदैव दूर ।
पूर्वोक्तभावेरिति यश्च युक्त स एव गता च गतिं तिरश्चाम्

संस्कृतार्थः—यत्च भदाचारविरहित, विवकविहान, अनि प्रमादी, अनिप्रमादी, भक्ष्यभक्ष्यविवरहित, बहुभभोक्ता, स्वधर्ममार्ग

दूर, बहकायुक, सोमा, विषयविषे निमग्न, सत्पात्रदानादि साक्षर्यो
पेक्षक, मायाचारसहित स च स्वोपात्ते भावैस्तिथ्यगतिं याति ॥५६॥

The person goes to the organic world who has renounced all customary observances who is thoughtless, who tells a lie, who makes many mistakes, who eats prohibited articles, whose nature is crooked, who eats too much and who does not follow religion, who is a pretender, who is covetous, who is plunged in sensual objects, who always keeps aloof from duties like giving donation etc and one who has the bad qualities described above. (5-6)

अर्थ — जो पुरुष आधाररहित है, विचाररहित है, सदा मिथ्या बफवाद करता रहता है, अत्यंत ममादां है, अभक्ष्य भक्षण करनेवाला है, अपना प्रवृत्ति सदा धर्मसे विपरित रखता है, जो अधिक अन्न भक्षण करनेवाला है निजधर्म पराङ्मुख है, मायाचारी है, छोपी है, विषयोंमें सदा लीन रहता है और हानपूजा आदि धर्मसे सदा दूर रहता है, जो जीव ऊपर कह अनुसार अशुभ भावोंको धारण करता है, उसे तिर्यच गतिमें जानेवाला समझना चाहिए ।

प्रश्न—तिर्यच गतिमें कितने समयतक रहना पड़ता है ?

उत्तर—वहाँपर उत्कृष्ट स्थिति तीन फल्य, और जघ-य अन्तर्मुहूर्त तक रहती है । और भवनी २ स्थित्यनुसार मध्यम विकल्प असम्भ्यात है

प्रश्न — वहाँ किस तरहक दुःख भागने पड़ते हैं ?

उत्तर — वहाँ पराधीनताम उत्पन्न उद्वेग, मदन बधन आदि अनेक दुःख प्राप्त होते हैं । और समय २ में आहार पानादिक

का नहीं मिळना, तथा असह्य उष्ण, शीत आदि दुःख, मळ-
मृषादिके ऊपर ही सोना, उठना, बैठना, अपने दुःखोंको दुस-
रसे कहनेकी असमर्थता इत्यादि दुःख तीन पल्पतक भोगने
पढते हैं । यह मनुष्य उपरोक्त प्रकारक भावोंकी तरतमतासे
कुत्ता, बिल्ली, घोडा, गधा, हाथी आदि माना प्रकारसे तिर्येच
होकर जन्म लेता है । अतः मायाचारादिक दुर्वासना न करते
हुए शुभभावोंसे अपना समय व्यतीत करना चाहिये ।

मनुष्ययोनिं को ज्ञेयो यातीति यद् मो गुरो ।

Question — Oh, preceptor, tell me which being is
born as man

प्रश्न — हे गुरो ! मनुष्ययोनिमें जाकर कौनसा जाव उत्पन्न होता है ?

य खल्पलोभी विमलप्रवृत्ति, ससारभीरुश्च दयार्द्रचित्त ।
विनीतवृत्ति समशान्तियुक्तो, धर्मप्रचारी च कुकर्पलोपी ॥
रुधि विघत्ते गुरुदशशास्त्र धर्मे सुदान यजनेऽपि दक्ष ।
पूर्वोक्तभावेरिति यश्च युक्त, स एव धीरो नरजन्मगाभी ॥

संस्कृतार्थ—यश्च मानव, खल्पसमुष्ट, निमळाचारमार्गप्रवृत्त
सवेगपरायण, दयालु, विनयशील शान्तिममतासाधक, धर्मप्रभाव
कोऽवर्मविरोधिरश्च, देवगुरुश्रुतभक्त, मदमें सत्पात्रदाने तथा यजन
पात्रनादिके सत्कार्ये रक्ष, धीरश्च श्रोपात्तपथ्यमपरिणामवशगत
मनुष्यगतिं याति ॥ ७-८ ॥

That wise being is born as man, who covets little,
who is pure who fears the worldly affairs, who is
kind in his heart, who is modest by nature, who is
equally peaceful at all times, who spreads the religion,
who destroys bad deeds, who takes interest in the
preceptor, God and the religious books, who is diligent

in religion, in giving donation and in worshipping God and one who possesses the qualities described above (78)

अर्थ—जो जीव बहुत ही कम लोभ करता है, जो अपनी मष्टिको सदा निर्मल रखता है, जो ससारस भयभीत है, जिसका हृदय सदा दयालु बना रहता है, जो सदा विनयपूर्वक रहता है, जो समता और शान्तिको सदा धारण करता रहता है धर्मका प्रचार करता रहता है, कुरूपोंका नष्ट करता रहता है, दशशास्त्रगुरुमें सदा श्रद्धान धारण करता है, जो धर्म धारण करन, दान देने और पूजा करनेमें अत्यंत चतुर हैं। इस प्रकार के शुभ भावोंस जो सुशोभित है वह धीरवीर मनुष्यगति में जाकर जन्म लेता है।

प्रश्न—मनुष्यगतिमें कितने कालनक रहना पड़ता है ?

उत्तर—भोगभूमि की अपेक्षासे उत्कृष्ट तान पर्य वर्ष, कर्मभूमि व विदेह क्षत्रकी अपेक्षासे एक काटी पूर्वकाल और जय-य अन्तमुहूर्त्तकाल तक रहना पड़ता है। मध्यम विकल्प असरपात हैं।

प्रश्न—भागभूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस स्थानमें अग्नि, पत्ति, कृषि, वाणिज्यादि पदकर्मोंमेंसे जीवनोपाय करनकी आवश्यकता नहीं है, केवल भाजनांग भाजनांगादि दशविध कल्पवृक्षोंसे इच्छित द्रव्य, घर, आहार, वर्तन इत्यादि सब भोगापभोग मिलत हैं, ऐसे सुखमय स्थानोंका भागभूमि कहते हैं।

प्रश्न—विदेहक्षत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ जीव असरपात वर्षकालके आयुको पाकर,

थी तीर्थंकरोंके चरणकमलोंकी साक्षान् सेवा कर के ही जन्म की पापता प्राप्त होती है उस विदेहक्षेत्र कहते हैं। दर इन्द्र क्षेत्र इस जन्मद्वीपके बीचमें है। वहाँपर अनवरत बन्दहा-न्दो-होवा रहता है। और पुण्यजीव ही वहाँ उन्मत्त होते हैं। इस पंचमकालमें भरतक्षेत्रसे मुक्ति न हानवर थी। इस मनुष्य वर्गमें विशिष्ट पुण्यसचय करके विदेहक्षेत्रमें जन्म पाकर नहीं करके मोक्ष जा सकते हैं। अतः भव्य प्राणियोंको पुण्य मार्गसे ही विदेहक्षेत्रमें जन्म लेनेका प्रयत्न करना चाहिए।

स्वर्गतिं कीदृशा जीवो याति सो सद्गुणो वः!

Question — Oh, good priest! what kind of man goes to heaven?

प्रत्न — हे गुणो! अब यह बतलाइये कि स्वर्गगतिमें जानेवाले मनुष्य का भोगाचरणीराज्य भयाद्विरक्तो, दशमनी व मन्त्रज्ञान का सम्यक्त्वयुक्तउचरमागनीन, स्वाध्यायमन्त्रज्ञान, निजात्मशुद्धि, स्वपरापकार, कर्तुं सदा सत्यं, पूर्योक्तभाषीरिति यदच युक्त, स गण्य मन्त्रोन्मत्तनाशनादी

संस्कृतार्थ—५२४ ससारभागशतारिजिज्ञेय, मन्त्रोन्मत्तनाशनादीनां सकलव्रत वा गृहात्, सद्दृष्टिसहित, अन्धे व मन्त्रोन्मत्तनाशनादी, स्वाध्यायजपतपारिकार्ये लान, निजापविषय मन्त्रोन्मत्तनाशनादी, कर्तुं सदा उद्युक्त, स स्वाशसगुणभावोदयवर्धनो जन्म ॥२०३३३

Only that fortunate being who is free from enjoyment, who observes the five vows in some degree completely (महामत), who believes against religious principles, who

religious books who does penance, who always tries to keep his soul pure and tries to do good to others, and one who possesses the feelings mentioned above

(9 10)

अर्थ—जो मनुष्य ससार शरीर और भोगोंसे विरक्त है, जो देशत्रती है वा सकलत्रती है, जो सम्यग्दर्शनसे सुशोभित है, परंतु जो चरमशरीरी नहीं है, जो स्वाध्यायमें लीन रहता है, तपश्चरणसे सुशोभित है और जो अपने आत्माकी शुद्धि, अपने आत्माका कल्याण तथा अन्य जीवोंका कल्याण करनेके लिए प्रयत्न पूर्वक सदा उत्तम करता रहता है, इस प्रकार जो ऊपर लिखे शुभ भावोंसे सदा सुशोभित रहता है वही भव्य स्वर्ग जानेवाला समझना चाहिए ।

प्रश्न — स्वर्गमें रहनेवाले जीवोंकी कितनी स्थिति है ?

उत्तर — उत्कृष्टायु तवीस मास वर्ष, जघन्यायु दसहजार वर्ष और मध्यम विकल्प अनेक प्रकार है ।

(सागरका ममाण नरकगतिके वणनमें कहा गया है)

प्रश्न — स्वर्गमें कैसे सुख मिलते हैं ?

उत्तर — स्वर्गमें अनेक देवांगना, अप्सरादि देवियोंसे उत्पन्न सुख देवगण भोगते हैं, वहां कृप्यादि आरभक्रिया नहीं है । जब वहां उत्पन्न होते हैं सभी सोलहवर्षके युवकोंके समान उपपाद शय्यासे उठ बैठते हैं । सभी सत्य देवांगनायें रत्नवस्त्राभरणोंको लेकर दास दासी वगैरे आकर सामने खड़े होते हैं । दश विध कल्पवृक्षोंसे जो चाहे वस्तु मिलते हैं । जो सम्यग्दृष्टि देव हैं वे अपने विमानमें बैठकर अनेक तीर्थस्थान नदीश्वर आदि

दीर्घों और जहाँ २ अकृत्रिम चेत्यालय है, वहाँ पहुँचकर बरना करत है। विशेष पुण्यस दबेद्रपद मिळता ह। सातिशय पुण्यसे यह जोब द्मर भवस मोक्षका प्राप्त करन याग्य लोका तिक दब या अहमिंद्र पदका प्राप्त करता है। अपना आगुमे छह महिने अवश्य रहनपर उन दवोंको पुण्यपाळा आभरणादिकाका काति कम हा जाती हैं, तब उनका अपरिमित दु ख हाता है। केकिन सम्यग्दृष्टियोंको यह दु ख नहीं हाता है। सम्यग्दर्शनके फलसे स्वर्ग मिळता है। श्रुमकापोंक फलसे भवनवासो आदि दब होत हैं। अत सम्यग्दर्शन माहा करक अतिशय पुण्य पाकर मोक्ष प्राप्तिक छिप् प्रयत्न करना चाहिये।

* कीदृश पुरुषा लोके मोक्ष गच्छति भा गुरो !

Question — What kind of man obtains the final beatitude ?

प्रत्न—ह गुरो ! इष ससारमे कैसा मनुष्य माक्ष प्राप्त कर छता है? महाव्रत वा समिति दधानो, निजात्मनिष्टचरमागधारी। कर्तु स्वराज्य यतते सदैव, स्वात्मानुभूत्या स्वपदस्ति लीन। ध्यानन शुक्लन च कर्मलता द्रष्टा प्रयादा च निजात्मना य। पूर्वोक्तभावेरिति यद्वच युक्त स एव योगी भुवि माक्षभार्गी॥

संस्कृतार्थ—यश्च मानव पचमहाव्रत धारयन् पचसमिति पाळयति, स्वा मानदमान, चरमशरारधारक, स्वात्मपद प्राप्तु यतत, स्वानुभूति चानुभवति, शुक्ल यानानलन कर्मजन दहति, आत्मना द्रष्टा प्रयोदा च स स्वात्मनःपविशुद्धमावबलन मात्ममाश्रयति तथा च अनत काट्ययंत परमानदपरिपूर्ण स्वराज्यमधिगच्छति ॥ ११-१२ ॥

Only that fortunate being on this world is fit

to get the final beatitude who observes the five vows completely or who follows the five rules of behaviour (समिति) who is absorbed in his soul who follows the religious principles who always tries to get independence, who is inclined in his own experience and his own position (Station) who destroys the evil deed by his pure meditation, who sees and advises his own soul, and one who possesses the things mentioned above (11 12)

अर्थ — जो मुनि महाव्रत व समितिको धारण करते हैं, जो अपने आत्मामें सदा निमग्न रहते हैं, चरमशरीरी हैं, जो मोक्षरूप स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए सदा प्रयत्न करते रहते हैं स्वात्मानुभूति और स्वात्मपदमें सदा लीन रहते हैं। जो शुद्ध ध्यानके द्वारा कर्मोंका नाश करनेवाले हैं और अपने शुद्ध आत्माके ज्ञाता द्रष्टा हैं, इस प्रकार जो मुनि शुद्धभावोंसे सुश्रुत हैं व ही मुनि इस ससारमें मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न—मुनियोंके आवश्यकीय मूळगुण कितने हैं ?

साधुके लिए निम्न लिखित अष्टादश मूळगुणोंका पालन करना अनिवार्य है।

[१] अहिंसा महाव्रत—पूर्ण अहिंसा धर्मका पालन करना

[२] सत्यमहाव्रत—पूर्ण सत्यधर्मका पालन करना, [३] अस्तय महाव्रत—पूर्ण अस्नेयधर्मका पालन करना, [४] ब्रह्मचर्यमहाव्रत—पूर्ण ब्रह्मचर्यधर्मका पालन करना, [५] अपरिग्रहमहाव्रत—पूर्ण अपरिग्रहधर्मका निवाह करना, [६] ईर्ष्यासमिति—प्रयोजन जतुरहित भागसे चार हाथ जमीन देखकर चलना, [७]

भाषासप्तमिति—निर्दोष उचन बोधना, [८] एषणासप्तमिति—
 गृहभाजन जा गृहस्थन अपन छिए तयार किया हा, उक्त मिश्रा
 रूपस मक्ति एव नि स्वाय भावसे दिय जानेपर ही लेना [९]
 आदाननिष्पण्णा सप्तमिति—अपना शरीर और अन्य उक्त जा
 कुठ भा हा उमे देख-भाळकर उठाना एव रम्बना, [१०] प्रसंग
 सप्तमिति—पळमूत्रादिका त्याग जावरहित म्यानमे करना [११]
 षष्टीनिराघवत—सुदर और असुदर दर्शनाय वस्तुभोंप रागद्वेष
 तथा आसक्तिका त्याग करना, [१२] करणेद्रियनिरोधवत—
 सुदर और असुदर स्वरमे विरक्ति एव आसक्तिका परिहार [१३]
 प्राणेद्रियनिराघवत—सुगंध तथा दुग्धमे राग-द्वेषका त्याग
 करना, [१४] रसनेद्रियनिरोधवत—जिह्वाको छालुपताका त्याग
 करना [१५] स्पर्शनेद्रियनिरोधवत—मृदू रूक्ष आदि भाट रक्षा
 के दुःख अथवा सुखरूप स्पर्शमे हर्ष विषादसे बधित रहना [१६]
 सामायिक—जीवन-मरण, सयोग-विषाग, सुख-दुःख आदि
 मे राग-द्वेष रहित समभाव रखना [१७] स्तवना [१८] ईश्वरना,
 [१९] प्रतिब्रमण—किये गये दापोंको शाधना [२०] श्याधना—
 आगामी कालके छिए अयोग्यवस्तुका त्याग करना, [२१]
 कायोत्सर्ग, [२२] केशलोच—तीन चार माहिन ईश्वर उपासना
 पूर्वक अपन हाथसे मस्तक एव मूळके बाळाका रक्षा [२३]
 नम्रता—बद्ध, चर्म, तृण आदिस शरीरको रक्षा अथवा
 दिगम्बर वेपमें जीवा विताना [२४] ध्यान—ज्ञान, उक्त
 अज्ञत छेपन आदिका त्याग करना [२५] शिवायन—
 याधारहित गुप्त प्रदेशमे दण्ड अथवा धनुष आदि म्यान
 थोड समयके छिए सोना [२६]

मजन आदिसे दतधावन नहीं करना [२७] स्थितिभोजन—अपने हाथोंको पात्र बनाकर दीवाल आदिका सहारा न लकर चार आंगुलके अंतरसे सम-पाद खड होकर शुद्धतास आहारग्रहण करना [२८] एकभुक्त—सूर्यके उदय और अस्तकाळकी तीन घंटा छोड़कर एकवार भोजन करना ।

इस प्रकार अष्टाईस मूक्युणोंको धारणकर चाईस परीषहों का भी शांत हृदयस जातना चाहिए ।

प्रश्न — मोक्ष किसे कहत हैं ?

उत्तर* — यह आत्मा जब ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका नाश कर, इस ससारचक्रनस पार होकर, अनतज्ञान, अनतदर्शनादि आठ जो गुणोंका प्राप्त करता है उस मोक्ष कहत हैं । श्रीउमा स्वामी आचार्यश्रीने ऐसा कहा है कि 'कृत्स्नकर्मविप्रमाक्षो मोक्ष' यह मोक्ष जोफके अग्रभागमें है । उस स्थानको प्राप्त करनेपर यह जीवात्मा परमात्मा हो जाता है । वह फिर जन्ममरणरूप ससारमें आकर दुःख नहीं भागता है । उस स्थानको प्राप्त करनेके बाद राग, द्वेष, मद, मात्सर्यादि विकार उस आत्मामें उत्पन्न नहीं होत हैं । जिस प्रकार एक बीजको जलानपर फिर उसमें अकुरोत्पत्तिकी योग्यता नहीं रहती है, तद्वत् उस आत्मा में रागद्वेषादि विकारभाव उत्पन्न नहीं हो सकत हैं, अन्य समदायवाले मोक्ष पदायका स्वीकार ता करत हैं, परन्तु फिर वहाँस कभी न कभी इस ससारमें जावको भाना पडता है ऐसा कहत हैं । यदि यह बात है तो उसे वह नयार्थ सुख नहीं है । वर्याँ कि उसके बाद दुःख समुद्रमें फिर पडना पडता है । परन्तु

अनेकाववादी (जैन) मोक्षके स्वप्नको ऐसा नहीं मानते हैं। जैनवादके अनुसार परमात्मा अनतानतकाळतक परमात्मदशमे पर हाकर सुख भोगता है।

ऐसे परम पवित्र स्थानको प्राप्त करना हर एक पशुपक्षा कर्तव्य है और उसके लिए अबश्य ही मयत्न करना चाहिए। परी आत्मकल्याणकी व जीवात्माकी उत्तरीकी पराक्षाण और आदिम ध्यय है।

आत्मकल्याण चाहनेवाला भक्त और सद्गुरुओंके पाद मूले जाकर सद्गुरुओंको ध्यान करे एवं आत्मकल्याणक साधक मार्गका अवलम्बन करे। यह आत्मा अनादिद्वारा स्वयंसे हाकर क्रीडादि विकारोंमें सुखामुभव करता हुआ जाता है। आत्माको उन कर्मोंसे मुक्त होनाके लिए एक निरालस्य है। उस ही काळछवि कहते हैं। कबल आत्मा हीरा सोच नसे मोक्ष नहीं भिद्यता है। उसके लिए दशभूत, इन्द्रास्त्रि, स्वाध्याय, सयम, तप, स्तोत्र आदि शुभकार्योरेकनस्यका व्यवहार करना चाहिए। अनक भवोम इन्द्रिणा, इन्द्रिण नय, कायबल्य करके मनश्चनादि तपोका व्यवहार करना चाहिए। य सय आत्माके विद्यमान कर्माके कन्दस्थिति करनके लिए और शुभपरिणामोंके बचनके का कारण है। शुभपरिणामोंकी वृद्धिसे आत्माके अशुभको नश्य हाकर उसमे निर्मलज्ञानका विकास होता है। विद्यातसे आत्माको समारकी परिस्थितिका परिग्रहण है। यह आत्मा तत्त्वविचार करके आत्मा और मनुका तत्त्व ज्ञान छगता है और उस दहादि पदार्थको और

ज्ञानादिगुण शाश्वत और उपादय इस प्रकारका ज्ञान हाता है परव्याप्तिसे ग्वाय हुए निज गुणाको प्राप्त करनके लिए गुरु ओके उपदेशानुसार प्रयत्न करता है । आगममें वर्णित मार्गस कर्मपरतन्त्रताको दूर करन आत्माक निजगुणोंको प्राप्त करता है । इसी अवस्थाका प्राप्त वा स्वराज्य कहते हैं । ऐसे स्वराज्यको प्राप्त करनके लिए हर एक भव्यमाणी अनवरत अवश्य प्रयत्न करें ।

स्वराज्य प्राप्तिके सरल मार्गको " घृहन् बोधामृतसार " में विस्तारसे वर्णन किया है, वहाँसे ज्ञान लेना चाहिए । पहापर सक्षेपस दिग्दर्शन माग किया है ।

इस प्रकार परमरूप, प्राण स्पर्णीय, विघ्नयय, तरेद्रपूज्य,
चारिप्रचूडागणि आचार्य श्रीकृष्णसागर महाराज—
विरचित लघुबोधामृतसार समाप्त हुआ ।

समाप्तः ।



श्री १०८ आचार्य कुयुसागर महाराजकी

★ पूजा. ★

[स्थापिता—घंटराम प आनन्ददासजी मग ।

स्थापना—(अरिष्ट छन्द)

एय पही घंय आन घंय मम माग्गवा,

देम कुन्पु छरि परम माग्ग गुरुदेवको ।

द्वि-उपदर्पो मिष्ट भष्ट भाषण करे,

भविगण सुनत हृदयमे आनन्द अति मरे ॥१॥

भवदापि नारण उत्तम तरणि बन्धानिपे,

हृदयगुण्यमे आथ कर्मिणु भानिप ।

आहानन मर्यादन सन्निधिकरणभी,

रतनप्रय एरदान देउ भवि शरणभी ॥२॥

ॐ श्री आचार्यवर आमुमुसागर स्वामिन् अत्र अवतर

अवतर सर्वोपद् । इवाहाननम् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।

अत्र मम सन्निहितो भव मम वपद् सन्निधाकरण ।

स्त्रीदापि सम जनहार, गीतल सुखकारी,

श्री गुरु त्रिग नीर चढाप, जनम जरा टारी ।

श्री कु-पुर्णसिद्ध गुरुदेव, जगपे द्वितकारी,

आनन्दसे पुने भाज, मिल सप नरनारी ॥३॥

ॐ श्री श्री आचार्यवरश्राकु युसागरस्वामिने ज मज्जापृषु
विनाशाय जल निर्बपामीति स्वाहा ।

केशर कर्पूर मिळाय, चदन सग घसें,
भारि मिळ सच आज चढाय, भव आनाप नसे ॥
श्रीकृष्णसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनदसे पूजे आज, मिळ मर नरनारी ॥२॥

ॐ श्री आचार्यवर श्राकु युसागरस्वामिन ससाराप-
विनाशाय दि पचदन ।

शुभ तदूळ चद्र समान, असप सुखकार,
चरणोंमें पुञ्ज चढाय, सब ही दुख टारें ।
श्री कृष्णसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनदस पूजे आज, मिळ सच नरनारी ॥३॥

ॐ श्री आचार्यवरश्राकु युसागरस्वामिने अक्षपदप्राप्तये
दिष्वाक्षत ।

चम्पा भट जुही गुलाब, गेंदा परुवाके,
ये काम-घाण नश जाय, भट घरू लपाके ।
श्री कृष्णसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनदस पूजे आज, मिळ सच नरनारी ॥४॥

ॐ श्री आचार्यवरश्राकु युसागरस्वामिने कामवाणविना
शाय दि प पुण्य ।

ल घर घर आदि, फेनी घाल भरें,
यह छुषा चदनी नाश, गुरुसे विनय करें ।
श्रीकृष्णसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनदसे पूजे आज, मिळ सच नरनारी ॥५॥

ॐ -ही श्रीआचार्यवरश्राकुथुसागरस्वामिन बुधारोगविना
शाय दि पनेवेद्य ।

मणिमय दीपककी राशि, सबही तिमिर कट ।
हा जगपग ज्योति अपार, ज्ञानकळा मकटे ।
श्री कुपुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनदस पूजे आज, मिळ सब नरनारी ॥६॥

ॐ -ही श्रीआचार्यवरश्राकुथुसागरस्वामिन मोहाधकार-
विनाशाय दि०प ॥१॥

के मनहर धूप अनूप, हुताशन शेष करे,
वसु कर्म काष्ठ जर जाय, सब मिळ अर्ज करे ।
श्री कुपुसिंधु गुरुदेव, जगक हितकारी,
आनदसे पूजे आज, मिळ सब नरनारी ॥७॥

ॐ ही श्रीआचार्यवरश्राकुथुसागरस्वामिन अष्टसप्तदहनाय
दि पधूप ।

श्रीफल अरु दान्य बदाम, पिस्ता सुखकारे,
शिवतियक पावन हतु, ह्यावे अति प्यारे ।
श्री कुपुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनदसे पूजे आज, मिळ सब नरनारी ॥८॥

ॐ ही श्री आचार्यवरश्राकुथुसागरस्वामिन माक्षकप्रसाय
दिश्र्यक ।

जल चदन असत पुष्प, नवज अति ताज,
ल दीप धूप फळ, अर्घ 'आनद' अप भाजे ।
श्रीकुपुसिंधु गुरुदेव, जगक हितकारी,
आनदस पूजे आज, मिळ सब नरनारी ॥९॥

ॐ ही श्रीआचार्यवरश्रीकुथुसागरस्वामिन अनर्घ्यपदप्रसाय
दिभ्यार्थम ।

अथ जयमाला

— दोहा —

छथुसिंधु गुरुवर महा, जग जनके प्रतिपाल ।
हर्षित हो आनद युत, गावें गुण गण माल ॥

पद्दरी छन्द

जय कुन्धुसिंधु गुरुवर मुजान,
आतम द्विष तप करते महान ।
जय तेरह विध चारित्र पाळ,
भवसिंधु तार गुरुवर दयाळ ॥१॥

जय उचम शुभ दश धर्म पाळ,
भवि जन लखि छवि होते निहाळ ।
जय जय जिनमत दीक्षा सुधार,
निर्मय निशक करते विहार ॥२॥

जय ध्यान सुधिर मुद्रा सुदेख,
भविगण सब भेटत कर्म रेख ।
जय राग द्वेष चित्तमें न ठान,
धर्मामृत चर्षायो महान ॥३॥

जय बोधामृत घर अथ जान,
की ज्ञानामृत रचना मुखान ।
चतुर्विंशति आदि अनेक अथ,
सस्कृतमें जो कल्याण पथ ॥४॥

जय धन्य धन्य श्री कुन्धु पाळ,
मनमोदक रचना की विशाल ।

जय धर्म धर्म में चहु प्रवीण,
 छवि ज्ञान समा आश्चर्य कीन ॥५॥

जय क्रोध मान माया विहीन,
 अरु मोह रोगको करत छीन ।
 भवसागरमें हँ सुख अपार,
 तिनको तुम पेटो जगतपाल ॥ ६ ॥

जय ऐनापुरमें जन्म ठान,
 सातप्पा श्रीके रत्न खान ।
 जय धर्य सरस्वती देवि माय,
 श्रीशक्तिशिरोमणि मुगुरु पाय ॥ ७ ॥

जय शिवसुदरि को करत ध्यान,
 सच ही को देत ज्ञान दान ।
 जय भारतवर्ष विहार कीन,
 श्रावक बोधे किरिया विहीन ॥ ८ ॥

जय परम घुरघर धर्म खान,
 चमकार्यो जिन वृष किरण मान ।
 उपदेशामृत से सींच सींच,
 सधीधे भवि जन खींच खींच ॥ ९ ॥

जय जय जग विभु करुणा निधान,
 गुरु सुखद मूर्ति गुण पुञ्ज खान ।
 उपकार किये जगके विशेष,
 बहु गुण गाये गुणिजन हमेश ॥ १० ॥

जय धर्म दिवाकर रत्न खान,
 भो गुरु मिथ्यातम हरन मान ।

जय मन्मथ-हारी परम धार,
वर्षाया जगमें धर्म नीर ॥ ११ ॥

जय साधु सुपदका मन्त्र जाव,
मगळ उत्तम हैं शरण आप ।
ससार कष्टका करत नाश,
सय पूर मन बांछित जु आश ॥ १२ ॥

जय विश्व उधारन दुख निवार,
सप सपन कर्म का करन धार ।
जय जय जयवतो गुरुदयाळ,
श्री कुयु सिंधु गुरुवर विशाळ ॥ १३ ॥

जय बलिहारा गुणगण कृपाल,
सष राव रक आ नमत भाळ ।
जय चरणवदना करत आन,
राजा महाराजा भक्ति गान ॥१४॥

तव गुणमहिमा अद्भुत अपार,
हम अल्पबुद्धि किम लहे पार ।
आनददास चिर नमत भाळ,
मेटा गुरुवर ये दुखद जाळ ॥ १५ ॥

ससार विषय य खार खार,
दुक चरण विनय लोंजे उबार ।
पूजे यदे मन वचन काय,
जळ गथादिक बसु द्रव्य व्याथ ॥१६॥

जय आदि सिंधु सुनिराय चीन ।
श्रीगुरु सेवा भक्ति करन लीन-

जय अजित सिंधुगुणघर महान ।

श्रीदेवसिंधुमुनि गुणगण निधान ॥ १७ ॥

पण्डितवर बाहुचळी महान,

प्रज्ञाचारी जिनदाम मुनान ।

सब सधसहित करते विहार,

भवि जीवनके जीवन सुपार ॥ १८ ॥

घत्ता

जय गुणगण भद्रा घम समुद्रा, आत्म सुद्रा सुखकारी ।

श्राद्धयु तपोघन, कय हनो मय पूजत भवि जन हितकारी १९

॥ इति पूर्णाध्याय ॥

घत्ता

ज पूज रघाघे गुणराण गावे, आत्म ध्यावे नर नारी ।

ते पुण्य घटावे शिवपुर जावे, आनंदपावे अत्रिकारी ॥२०॥

॥ इत्याशावाद ॥

घोर तपस्वी श्रेष्ठ मुनि, आदिसिंधु मुनिराज,

अध्य छेय पूजा करू, पार करो गुरुराज ।

ॐ -ही श्री मुनि आदिसागरस्वामिन् अर्घ्य निवशामीति स्वाहा ।

अजितसिंधु मुनिरायका, पूजो अर्घ्य चढाय,

पुण्यवृद्धि हो जगतमें पाप सब नासि जाय ।

ॐ श्री मुनि श्रीअजितसागराय अर्घ्य निवशामीति स्वाहा ।

देवसिंधु मुनिराजको चरणनि अर्घ्य चढाय ॥

में पूजु शुभभाषते दुष्ट कर्म नासि जाय ॥

ॐ ही देवसागराय अर्घ्य नि

अफरती.

जय कुथुस्वामी गुरु जय कुथुस्वामी ।
 आरती करू तुम चरण, आरती करू तुम चरणे ।
 निशदिन शिश नामो, जय देव जय देव ॥१॥
 ऐनापुर नगरी मध्ये, सातप्पा पिता, गुरु सातप्पा पिता ।
 माता सरस्वति कृत्वे [२] जनम्पा गुरुदाता ।
 जयदेव जयदेव, जय कुथु स्वामी । जयदेव ॥२॥
 शांति-सागर श्री गुरुचरणे शिश नामी गुरु चरणे
 शिश नामी ॥
 आप धयो बैरागी [२] सद्गुणना धामी ॥
 जयदेव जयदेव, जय कुथुस्वामी ॥ जयदेव ॥३॥
 दीक्षा लीधो गुरुदेवा-आभव जलतरवा-गुरु आभव
 जलतरवा ॥
 ज्ञानामृत धरसावो [२] शिवरमणी वरवा । जयदेव
 जयदेव, जय कुथुस्वामी । जयदेव ॥४॥
 बोधामृत ज्ञानामृत-ग्रथ नवीन सारो (गुरु)
 राधिया पूरण प्रांत [२] सुद्गुणना धारी । जयदेव
 जयदेव जय कुथुस्वामी—जयदेव ॥५॥
 व्याख्यानो विधावध, आप सदा करता (गुरु)
 सौ समाज दुख हरता (२) बाणी उचरता । जय, जय
 जय कुथुस्वामी—जयदेव । ६॥
 श्रीगुरुनी सेवा—ज भावे करता [गुरु]
 कहे चुनीळाळ सेवक (२) भवसकट हरता । जयदेव
 जयदेव जय कुथुस्वामी—जयदेव ॥ ७ ॥

==* निवेदन. *==

श्री श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालाके
उत्तमोत्तम सर्व ग्रंथोंका स्वाध्याय
करना चाहते हैं वे (१०१) देकर
ग्रंथमालाके स्थायी सदस्य बनें ।
स्थायी सदस्योंको ग्रंथमालामें
प्रकाशित व प्रकाश्य सर्ग ग्रंथ
बिनामूल्य दिये जाते हैं ।

निवेदक—

मन्त्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला
सोलापुर.

THE OBJECT OF ESTABLISHING GOD'S IDOL

It is evident that man forms a sort of similar complex in his mind from a picture or a photograph placed before him. There is no need of guessing or thinking on this matter. This is known by all children as well as men. Hence there is a necessity of having a like picture before us, of the extra ordinary personality. We can make our life happy by behaving in a manner similar to that of the personality. Hence it is our life-long duty to think of the different states of the great personality (God). We should meditate and worship it. This alone is the object of idol worship that we should follow the model of God in order to achieve the best qualities which are found in him. (37-40)

अर्थ--निरञ्जन निर्विकार भगवान् की निर्विकार मूर्ति स्थापना से राग, द्वेष, मोह से दुखी ससारी जीवों को शान्ति और आराम मिलता है, उस परम कृपालु के कार्यों की याद आती है, सदा हृदयमें उस प्रभु के आकार [छवि] और गुणों का मूर्ति के सकार से धारण किया जाता है और उसके ध्यानसे खुद को तादृश [उसके समान] बनाने की इच्छा से ही मूर्तिकी भक्ति और बन्दना की जाती है, यही मूर्ति स्थापना का समीचीन

भारार्थ—यह प्रमाण मिद्ध बान है कि सामन जैसा चित्र या फोटो हाता है, वदनुकूल ही मनकी वृत्ति हाती है। इनक छिय तर्क विश्व की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बाळ गोपाळ सब ही जानत है। इसलिये इन अवतारी पुरुषोंका विश्र जो है सो सामने रखन की आवश्यकता है जिसको बजह ये जन्मसे छेहर निवाण पर्यंत जा २ उद्दान कर्तव्य किये हैं उनकी भिन्न अवस्था की भिन्नमूर्ति का ज्ञान, स्नान, पूजन करके तदनुकूल ही आचरण करनेमे हय अपने आवनका सुखी बना सकत है। मूर्तिपूजाका उद्देश्य सिर्फ यहा है कि उमक द्वारा उस मूर्तिपूजन दर क भनुरप भार श्रष्टगुणोंका अपन औरतम उताकर मसार क समस्त अनुकरणीय आदग उपस्थित करें।

स्फुट विवेचन—जैसे किमी घालकका अश्व, गजादिक का जान कराना हा ता उसके सामन उनका ही चित्र रखकर उनीका गुणधर्म बताना होगा, अगर भिह विद्याध आदि का चित्र रखकर उनका गुणधर्म बतया जायगा तो अश्व गजादिक का ज्ञान कदापिन होसकगा। या भारतदेश का भूगोष्टिक ज्ञान कराने के छिये यारप का नक्शा सामने रखवा जायगा तो यारन का ज्ञान कदापिन होसकेगा, उसके छिये भारतका नक्शा ही रखना होगा। इसी प्रकार अवतारी पुरुषों की मर्यक अवस्था का ज्ञान करान के छिये तदनु मूर्ति की भाव

इयकता है, तभी उसका वास्तविक ज्ञान हा सकगा । आज फल जो भवमतान्तर है यह सब वास्तविकताके न समझन के प्रभाव का फल है । कारण एक एक अणु सवने छिया है वह सत्य जरूर हैं, परन्तु पूर्ण नहीं है । अगर क्रमसे प्रतिदिन सुबह से शामतक सब अवस्थाओंका आरोपण किया जाय तो यथेष्ट फल की प्राप्ति हो सकेगी व सारे जगत्का एक धर्म होगा । जिस समय भगवान्का अभिषेक किया जाता है उस समय जन्म कल्याणक वा आरोपण किया जाता है वह घाल्य अवस्थाका भगवान् है व उसे वात्पछोछा भी कह सकने है । उस समय पचासत अभिषेक, गन्ध लगान अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प जैसे चम्पा चमेळी, गुलाब मागरा, जुही आदि चढा सकते हैं और वस्त्र आभूषण अलंकार भी भगवान् की प्रतिमा को पचकल्याणकादि घटी विधिमें धारण कराये जा सकने हैं । और फिर अष्ट द्रव्यसे पूजा भा की जा सकती है । पूजामें फल फलादिक सय प्रासुक द्रव्य ही काममें लना चाहिये । सौधेन्द्र और शची नामा इन्द्राणी चाल्यावस्था के भगवान् की गाढभक्ति, पूजा आदि करके एकभवावतारी हो गये हैं । भक्ति ही मुक्ति की दाता है ।

॥ भगवानके दर्शन करने का उद्देश्य ॥

जन्म कल्याणकके समय या राज्याभिषेक अभिषेक करते समय निम्न प्रकार भावना भानी चाहिये ।

हे ममी ! पूर्वजन्ममें आशने रिसवसिवा करन की माहनाको आपनाया था और जगत्क हिनार्य सपस्त वषव का छाट कर भवना तन मन मन सर्वस्व अर्पण किया था । इच्छिय आज आप जगत्पूज्यपद को प्राप्त होगये हैं । तीनधुवनके सपस्त नागन्द्र, इन्द्र, चक्रवर्ति आदि महान् २ पुष्य आपके चरणकपलोंकी सेवामें सस्र होकर मधुकरके भाव को प्राप्त हा रहे हैं । नमोभूत हा रह है । सुरेंद्रादिक आपकी भक्ति कर भशनेको कुतकृत्य मानत हैं । भुचर, खचर सपस्त मान्डीछिक रामा गण आपकी सेवा कर अपने नरजन्म को सफस मानते हैं और भाछौछिक रामसी वैभवको प्राप्त करत है । यह सष आपको सातिशष पुण्यको मगट करना है । यहाँतक कि आपके अवतरण हाने में सपस नरक सपान अशुभ सेवमें भी, जहाँ निरन्तर मारण, काटण, छेदन के सिबाष और कुछ छुनने दखने को भी नहीं पिछता है, सणमरके छिये शान्तिका साम्राज्य छा जाता है । आपके बचनातीत पुण्यसे प्रभावित होकर सौधमैद्र और शर्वा नावा इन्द्राणा आशकी भक्ति और सवा में इन त मय हो जाते हैं कि मुत्तिरूपी नगरामें मरेश करनेके छिय बड़े पासपार्ट (टिकीट) मिल जाता है । अर्षान् बे एक भवतारी बनकर अनादि काछीन ससार का भठ कर देते हैं । बे मत्येक कार्य को सिर्फ शब्द के

द्वारा न कहकर सत्कार क सामने अपनी निर्मल और पवित्रकृति का आदर रखते हैं । मत्पेक प्राणोंके जीवनका यही प्राथमिक ध्येय होना चाहिये । अगर वह अपनी आत्मा का पतन से बचाकर उत्थित और विकासपथ बनाना चाहता हो तो निरन्तर इसका उपाग करते रहने से यह कार्य अति सुलभसाध्य बन सकता है ।

भगवान् राष्ट्रावस्थामें हो ता निम्न भांति विचार करना चाहिये । हे मन्ना ! पूर्वप्रथमें आपने हृदयको ज्ञान रूपी जलसे सिंचन करके समस्तलाकषे विश्व सृष्टारके पतितपावन इस अहिंसाधर्म (या जैनधर्म) की भावना को मत्पेक मानवकी नस नस में छूट छूट कर भरने का घोरतिघोर प्रयत्न किया या और भूमटल पर समस्त भूपतिपोंको किस प्रकार इस अहिंसा सिद्धान्तका अनुयायी जानकर उसमें नियोजित कर्क और प्राण रक्षा करना है लक्षण जिसका ऐसा समीचीन धर्मका प्रचार किस प्रकार करू और इस सत्कारसे भ्रष्टाचार और अत्याचारका नाशनिशान मिटा हूँ । ऐसी उत्तम और शुभ भावनाओंको अपनेनेसे पुण्यानुबन्धी पुण्यको उत्तरदा कर आपने तीर्थकर पदको प्राप्त किया है जिसका धर्मन इन्द्र का गुरु सृष्टिपति भी करनेमें असमर्थ हैं तो औरोंकी क्या पात ? उस पुण्यसे खिचे हुए बचीस इमार हकुट्ट बद्ध राजा आपके चरणोंमें छीटते हैं । आपकी आत्माकी

प्रतीक्षा करते हैं। आपके अनुग्रहकी भीष मांगते हैं। आपकी सेवा करनेमें अपने नरजन्मकी पूर्णता समझते हैं और अनेकानेक अनुग्रह रत्न आपको समर्पित करते हैं। यह सब पूर्वोक्तानिष्ठ पुण्यका ही फल है। ऐसा जानकर मत्पक्ष अत्मार्थीको अपनी विचार धारा भी इस प्रकार रखना चाहिए। और कार्यरूपमें परिणाम कर अपने जीवनमें उतारना चाहिए।

दीक्षा ज्ञान और मोक्षकल्याणके सन्धमें दर्शन करते समय मनन योग्य विषय.

[१] हे प्रभो ! आप पाँचपर पाँच घरके क्यों विराजमान हैं ? पदपर पद घरनेका आपका आशय यही होना चाहिए कि सत्सारमें अर्थात् तीन छोकर और तीन सुषुप्तमें पड़त फिरने योग्य सब स्थानोंमें घूँट फिर चुकें। छोका काशमें एक भी प्रदेश ऐसा नहीं यथा कि जिसपर घूँटना फिरना नहीं हुआ हो। तात्पर्य यह है कि इस कार्यसे पूर्ण निवृत्त हो चुकें हैं। इसलिये पाँचपर पाँच घरके विराजमान हो। व्यवहारमें भी यह प्रचलित रिवाज है कि माँ, जान, बेटी जय घरका सब कार्य कर चुकती हैं तो पाँच पर पाँच घरकर बैठ जाती हैं।

[२] हे प्रभो ! आप हाथपर हाथ रखके क्यों विराजमान हो ? हस्तपर हस्तकी आरोपित करनेका आपका

अभिप्राय यही मालूम पड़ता है कि करने योग्य सब कार्योंस आप फुरसत पा चुके हैं। आपका छिपे का भी कार्य करना बाकी न रहा। आप पूर्ण कृतकृत्य हो चुके हैं।

[३] हे प्रभो ! आप आँख बंदकर नासाग्र दृष्टिकर क्यों विराजमान हो ?

आँख बंदकरन का आपका ध्येय यही होना चाहिए कि देखने योग्य सर्व पदार्थ आप देख चुके हैं। समारंभे कोई भी पदार्थ ऐसा न रहा जो आपका ज्ञानचक्षुक गोचर न हो रहा हो। सब आशा भी आपका पूर्ण हो चुकी है। इसलिये आप सौम्यदृष्टिका धारण करिय हुए विराजे हैं। आश्चर्या विद्याचर्मासे प्रसिद्ध पाणाकेनच अरुण चक्षाय मान होत हैं, परन्तु इससे आप बिलकुल रहित हैं।

[४] हे प्रभो ! आपने अन्न, अन्न, वस्त्र, आभूषण अलंकार आदि सबका परिस्पाग क्यों कर दिया है ?

आपका कोई शत्रु नहीं और आप अत्यंत निर्दर अपने आत्मस्वरूपमें अवलम्ब स्थित और अद्विग हो, इस लिये आपको शस्त्रास्त्रका आरुणकता नहीं।

वस्त्र, आभूषण, अलंकार, स्नान, गणविलान आदि सब भाग्योपयोग साधनों हैं। समारंभे कोई भी पदार्थ ऐसा न रहा जो आप के भाग्यमें न आया हो। आप तो अपने

शाश्वत आत्मनित्त स्वराज्यका भागनेमें मग्न हैं, इन सणिक भोगोपभोग पदाथोंमें आपकी क्या प्रयोजन है ? ज़र आप बाल्यावस्था या बालकलीलावस्थामें और राज्यावस्थामें ये सब आर इनका अनुभव कर चुके हैं और सब ये आप क छिप कार्यकारी और उपयोगी सिद्ध हुए हों, परंतु अब निरजन निर्बिकार कृतकृत्य अवस्थामें ये आपके छिप बिडबुड अनावश्यक हैं । ये सब मोठी जीवोंक छिप उपयोगी हो सकते हैं, जैसे ये आपके बाल्यावस्था और गृहस्थावस्थामें थे । इसछिप इन सबको आपने छोट दिया है ।

सारः—मत्येक माणीक छिप अपने दिखमें पसी भावनाओंको स्थान देना चाहिये । यहाँ पर इतना छिख दना और भी ज़रूरी है कि केवल विचारों और भावनाओंसे ही काम न लेकर अवस्थानुसार मत्येक कार्यको मन, बचन और काय द्वारा करके उदाहरण स्वरूप आदर्श रखना चाहिये । यही एक मात्र देवदर्शन करनेका फल और उद्देश्य है । इसके बिना सब क्रियाएँ उद्देश्य हीन, निष्प्रयोजन मूलरहित, आंकटके बिना शून्यके समान हैं ।

हे भगवन् ! जो कोई आपका अनुकरण करेगा और आपके समान विश्वसत्ताक प्रतिका ग्रहण करेगा और कदाचित् में भी अपने परम भाग्योदयसे और आपके असीम

अनुग्रहसे आपके पथपाथिक बन सकूँ ता मैं दृढ विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि मैं भी आपके समान सातिशय पुण्यका वपकर और तीर्थकर पदको प्राप्तकर छाक करवाणके साथ २ आत्म करवाणकर आपके पास पहुँच सकूँगा। इसमें रचपात्र भी सन्देह नहीं, ऐसी भावना करके अपनी आत्माकी उन्नत और उच्च बनाना प्रत्येक मानवका जन्मसिद्ध अधिकार है।

नोटः—मगवानकी मूर्तिमें जन्मावस्था, या राश्यावस्थाका आरोपण करके जो पूजा, अभिषेक, स्तुति, स्तोत्र आदि करते हैं उनको सातिशय पुण्यबन्ध अवश्य होता है परन्तु निरजन निराकार अवस्थाका ध्येय रखना आवश्यक है और तदवतु चित्र रखना इससे भी अत्यावश्यक है।

उसके बिना सब निष्पयोजन है। यह उपदेश पाणिपामके लिए है। यह भीतराग अवस्था सन्यास अवस्थाका चित्र सबको रखना चाहिए। इसके बिना परमात्माके रूपमें रूप मिश्रना नहीं हो सकेगा।

शान्ति ।

शान्तिः ॥

शान्तिः ॥॥

मूर्ति पूजाकी मर्यादा

पूर्वास्ता पूज्यते मूर्तिस्नायदेव नरामरैः ॥

स्वात्मा ससारभागादी, मग्ना भवति दुग्धे ॥४१॥

यदा त्यक्त्वा तु भागादीन्, मग्ना भवति चात्मनि ॥

पश्चात् सत्यज्यते मूर्तिं स्वानदसुखभागिना ॥४२॥

ससृष्टवार्थ-पूर्वोक्ता निर्बिकारा अग्नि मूर्ति = प्रतिमा, ताव
देव नरामरै पूज्यते, यावात्स्वामा दुःखद दुःख ददातीतिवैभूते
ससारभागादी मग्न पतिताऽस्ति, यदा तु भागादीन् त्यक्त्वा
आत्मा आत्मनि निमग्नो भवति तत्रश्चात्तु (वायानन्दरूप सुखं
मुनक्त्येवशास्त्रेनात्मना, सा निर्बिकारा अग्नि प्रतिमा साज्यते ।

THE LIMIT OF IDOL WORSHIP

The above described idol is worshipped by men and gods, so long as their soul is engrossed in the worldly pleasures, etc., which in the end cause misery. But when the soul abandons the worldly pleasures and thinks of itself only, the idol worship is abandoned by the person who enjoys the happiness of thinking of the purity of the soul (41-42)

अर्थ-पूर्वोक्त निर्बिकारपशुकी मूर्ति भी देव मनुष्यादि द्वारा तब तक पूजी जाती है या दर्शनीय होती है जबतक पूजक व दर्शककी आत्मा इस दुःखदायी ससार थीर

मागोंके भोगनय मग्न है। परंतु ज्योंही वह आत्मा विषय समान विषयोंका छाड़कर आत्मार्थे मग्न होता है और स्वाधीन स्वात्मसुखका अनुभव करने लगता है, तब मूर्ति पूजनेको आवश्यकता नहीं रहती।

भावार्थ - मूर्ति पूजाको तभीतक आवश्यकता है जब तक आत्मा रागद्वेषसे मलिन है। रागद्वेषके सर्वथा नष्ट होनेपर आत्मा स्वयं परमात्मा रूप बन जाता है। सत्संगिक और एहिक इच्छाभ्रंश परे हा जाना है और भात्मिक रस में मग्न हा जाता है। फिर मूर्तिपूजाकी जरूरत नहीं है अर्थात् आत्मजनित स्वराज्य प्राप्ति कर लेता है। मूर्ति साधनमात्र है उसको साध्य समझ लेना भूल हागी। औषधि तभीतक कायमें लेना चाहिए जयनक शरीरमें रोग विद्यमान हा। रोगके नष्ट हानपर भी औषधि सेवन करत रहना मूर्खता हागी या सूर्यके विद्यमान होने दीयक जलाना घृषा है। इसी तरह परमात्मा रूप हा जान पर या आत्मनिष्ठ बनजान पर मूर्तिपूजा प्रयोजन भूत नहीं हागी। इसाछिए साधुसन्तोंक छिए मूर्तिका अथ छजन विशेष कार्यकारी नहीं है।

यथाश्वयाचन कृत्वा, रुदनेो बालकस्य हि ॥

दृश्व प्रति मुदा दृढ बालत्वात्तत्प्रशात्तये ॥ ४३ ॥

ददानि लोहं न माता, गृहीत्वा बालकं ऽपि त ॥

मस्थापरि किञ्चाश्च, ताद्यत्स रमन्तर्धत ॥ ४४ ॥

यावदश्व न जानाति, पश्चान्न्यजति त सुधी ॥

इति युक्तिप्रमाणाभ्यां, पूज्या कौ प्रतिमाऽमला ॥४५॥

संस्कृतार्थः—दृष्टा-तद्वारेणोक्तमेवार्थं समर्थयने यथा हि
बालवाचनं कृत्वा रुदतो, बालकस्य-शिशो, माता-जननी,
बालवाचप्रशासने, सारवन्तार्थं, लोहज-धातुकाष्टादिनिर्मित,
कृत्रिममद्वय ददानि-प्रपच्छति सोऽपि बालको मुदा सदर्पं दण्ड
गृहीतः, तदुपरि आरुह्य=आरोहणं कृत्वा, किञ्च तावत्कालं रमते=
करोति, यावद्वि अर्थत =वस्तुतः, अश्व न जानाति, यदा तु बुद्धि-
प्रमाणं तत्स्वरूपं जानाति, स सुधी त त्वन्नायेव, इत्येव प्रकारेण
युक्ति प्रमाणत्वं, अमला=निर्दोषा, निर्विकारा, प्रतिमा, कौ=
पूजे-र्था, पूज्या अर्चनीया ।

When a crying child asks for a horse, its mother, to comfort him, gives him one made of iron and the child also rides and plays with it gladly taking a stick in its hand so long as it is a child. But when it grows old enough it understands what a horse is and it no more wants it. Remembering this example the holy and pure idol is worshipped in this world (43-45)

अर्थ — ऊपर कहे अर्थको दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं कि जैसे घोड़ेके लिए रोते हुए बालकको उसकी माता उस राजी करनेके लिए, धातु या लकड़ीका घोड़ा दे देती है और वह बालक भी अपने शिशुसुखमें मोहपनसे, बड़ी खुशीके साथ दण्ड लेकर उसपर चढ़ता है और

नाना प्रकारकी ऋाडा करता है । किंतु जब घटा होकर युद्धिमान होजाता है और घोटके असछी स्वरूपको जानने लगता है, तब उस पनावटी घोटकेको छोड देता है । इसी प्रकार युक्ति और प्रमाणसे भगवान् की मूर्तिकी पूजा भी विधेय है । जैसे पनावटी अश्वसे भी वाळकका ऋाडारूप क्रियासे मनस्तुष्टि हो जाती है वैसे ही साधारण ससारी जन भी जयतक वे परमात्माके निकट स्वरूपको नहीं पहिचान सक है, तबतक कलितमूर्तिक सहारे भी विनती, भक्ति, पूजादिद्वारा अपन भावोंको भगवान्में समाकर अपनी भळारके धार्मिकी ग्रहण कर सकते है ।

भाषार्थ—यह निर्विवाद सिद्ध है कि जयतक आत्मा कषायकर मळिन है तबतक व उस मूर्तिमतके गुणोंका अपने में आविर्भाव होनेतक ही मूर्तिक अवलम्बनकी आवश्यकता है वाद्यम नहीं है ।

मूर्तिके समुच्च अविवेक—

पूर्वोक्त फलद त्यक्तया विधिं स-मार्गदर्शक ।

त-मूर्ता विविधां कृत्वा कल्पना ह्येशयर्दिनीम् ॥४६॥

त-मूर्ते समुग्र स्थित्वा, कचिद्भार्या घन यश ।

केचित्पुत्र गृह पौत्र, केचित्सत्ता गजादिकम् ॥४७॥

आयुरारोग्यता केचिन्मत्रतन्त्रादिसाधनम् ।

केचिद्वाज्य च भोगादीन् याचतेऽज्ञानत सदा ॥४८॥

संस्कृतार्थ—पूर्वोक्त स मार्गदर्शक कल्याणपथप्रदर्शक विधि पद्धति त्यक्त्वा, तस्या मूर्ते समुख स्थित्वा विविधा नानाप्रकारां, कल्पनां, क्लेशवर्द्धिनाम् विपत्तिवर्द्धिनाम् कृत्वा विधाय केचित् भार्या भोगवतीं याचते, केचित् धनं द्रव्यं, यशः प्रशसां केचित् पुत्रपौत्रादिकं, केचित् गृहं स्वत्तमधिकारं गणादिपरिमहं, केचित् आयुः—आरोग्यं, मन्त्रतत्रादिसाधनं कोचिद्राज्यं, भागादीश्च याचन्तं तं सर्वं दुःखदृष्टितमेवाज्ञानजनितत्वादिति ।

Leaving aside the above mentioned manner which shows the right path some men imagine different ways which lead to trouble For standing before the idol some men always ask for a wife, wealth, success some wish to have a son, a house, a grand child while others ask for authority and affluence such as elephants, etc, some ask for life and health or a charm spell etc while some ask for a kingdom, worldly pleasures through ignorance (46-48)

भावार्थ—इस प्रकार अपने छिये सन्मार्ग श्रेयामार्गको दिखानेवाली विधिको छोड़कर अनानीजन उम मूर्तिमें भी विविध प्रकारकी कटपना करते हैं। जो केवल क्लेश बढ़ानेवाली है। उस मूर्तिके समुख बैठकर कोई स्त्री, धन, अथवा कीर्ति मांगते हैं। कोई पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़े, घर वा अधिकार मांगत है, कोई आयु, आरोग्य वा मन्त्र तत्रादिकी सिद्धि मांगत है। कोई राज्य तथा भोग आदि मांगत रहते हैं, यह सब अज्ञानचष्टायें हैं।

भाषार्थ — ईश्वरकी भक्ति ईश्वर तुल्य बननेके लिए ही की जाती है। भगवानन स्वयं कहा है कि जो मेरे समान होना चाहता है उसको नरकृत्य करना जरूरी है। यद्यो कि अपने कर्तव्यको करनेसे मनुष्य नारायण बनता है और नहीं करनेसे नारकी बनता है। जिस प्रकारसे भगवानने सर्व सगका परित्याग कर षट्त्रिंशु परनिंदा, क्लेश, कुवासना, अभिमान और विषयकषाण आदिका त्यागकर अनक मशरके कायबलेशादिक तपके द्वारा अपनी आत्मा को सर्व प्रकारकी पापसे जुदा किया है और पवित्रतण बनाया है ऐसे भगवानकी भक्ति करने से मुक्ति मिळती है। भक्तिका पल्लव सिर्फ स्तुती, स्तोत्र या पूजादिक करनेसे नहीं है परन्तु उसके साथ २ तद्वत् आचरण करनेसे ही कार्यकी सिद्धि होगी अगर हम भगवत्सेवामें निमग्न रहेंगे तो उनके गुणोंके प्रभावसे हमारी प्रवृत्ती भी तपनुरूप हो सकेगी। ईश्वरकी भक्ति करके उसे धन, सम्पत्ती, स्त्रीपुत्रादिक व अनकानेक ससारीक पदार्थोंकी याचना करना माने अपनी मूर्खताका परिचय देना है। यद्योकि ईश्वर स्वयं इन बातोंसे - जुदा है और वह इन पदार्थोंको दे भी नहीं सकता है। यद्यो कि जिसक पास जो पदार्थ होता है उसीका देना समभव भी हो सकता है।

करनसे ही मिलेगा । यह साहजिक बात है कि अगर किसी जवेरीके पास जाकर कोई कपड़ा माग या किसी प्याज लस्सने बेचने बेचनेवालेके पास जाकर मोती मांगें तो खरीददारकी अविवक्षता और अज्ञानता ही दीखेगी । इसी तरहसे मूर्ति, जिसमें भगवान तो है ही नहीं, केवल चित्र मात्र है, अगर मन्त्र विधिसे उसमें भगवानका आरोपण किया गया है तो भा उसका सामन खड होकर विषयकथायका प्रगट करनेवाले और भवभ्रमण कराने वाले पदार्थोंका मांगना अति अनुचित ही नहीं परन्तु हास्यास्पद भी है । क्यों कि वह मूर्ति स्वयं चलन चलनादि क्रियासे रहित जड पदार्थ है ।

प्रश्न — यदि मूर्तिमें भगवान नहीं और वह कुछ देती देती भी नहीं है तो उसका यजन, पूजन, स्तुति, स्तोत्र करना सब व्यर्थ होगा ?

उत्तर—भो मित्र । ऐसी शका करना निर्मूल है जरा गहनतासे विचार करनेकी आवश्यकता है ।

मूर्तिकी पूजा करना ता भोजन करनसे भी क्यादा जरूरी है । जयन्तक हम पूजनादि क्रिया करत रहेगे तबतक हमारा मन उनक गुणोंमें रत रहकर उनक अलौकिक और अगन् कर्याणक कर्नव्यमें रमता रहगा और दोष छोडनेको और गुणग्रहण करनको आत्मा उत्सुक रहेगा । जितने समय उक्त कार्यमें सलग रहेग उनने समयतक पापापा

र्जन करनेवाले उद्योग आरम्भ और सय दुर्वासना छळ कपटादिकक द्वारा ससारका गळा घोटने आदिसे दूर रहेंगे इससे महान पुण्यघष हाकर यह जीष अपन आप घन, सक्ष्मी कीर्ति आदिका प्राप्त कर इस भृगुदण्डक उपर राज्य सपदा भी उपलब्ध कर सकगा । इससे यह सिद्ध हाजाता है कि मूर्तिहानि निष्काम पूजा करना महान् कल्याणकारी है ।

इसी प्रकार दीप धूप आदिसे त्रिलोकनाथजी आरती थी की जासकती है ये सब कार्य हा चुकनेपर फिर शुद्ध जलक द्वारा प्रतिमाके ऊपर महाशांतिघारा छोट करके उस प्रतिमाको फिर दुसरे दिनपर्यंत निरजन निराकार अतिम जो केवलज्ञान अवस्थाकी आकृति है उसीमें रहन दना चाहिये यहाँ समोचीन और आर्षविधि है । इसलिये प्रत्येक मनुष्य इसके वास्तविक रहस्यको समझकर तद्वत् आचरण करने लगेंगे तो ससारमें स्थायी शांति स्थापित हा सकेगी और अलग २ मदिरोंकी आवश्यकता न रहेगी और सब कलह और अशांति सदाके लिए ससारस विना जा होंग । राज्य अस्थामें भी भगवान् दिव्य सिंहासना सोन तलवार बटूक आदि शस्त्रोंको ग्रहण किए हुए बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा नमस्कृत हैं, चरण कमल जिनके सो भी पूजनीय और वदनीय हैं । साधुके लिए सिर्फ अतिम अवस्था उपादेय है । परंतु गृहस्थके लिए

सबही अवस्थाए द्रव्य और भावरूपसे नमस्कार करन योग्य हैं। जो एसा श्रद्धान नहीं रखता है वह सपत्ति नहीं है अपितु मिथ्यादृष्टि ही है।

कउ कर्मोधान है—

सदा स्वकृतकर्मानु-सारमेव फल भुवि ।

लभत तत्प्रतो जीवा म यते देवज घृथा ॥४९॥

सस्कृतार्थ — कउ हि सदा भुवि भुवनमात्र, सर्वे जीवा = नरापर
निका तत्प्रत = निरचयत स्वकर्मानुसार एव फल लभत, कचिद्-
ज्ञानिन, तत्कळ देवज = देवदत्त म यते, त्वृथैव = निरर्थकमेव ।

Beings always get the fruit, in reality, according to the deeds done by them only, but they vainly regard it as if obtained from god [49]

अर्थ — इम ससारमें सभी जीव चाह वो मनुष्य हो
देव हो या किसी भी पयागमें हो अपन किये हुए अच्छे
पुरे पूर्वोपाजित कर्मके अनुसार ही फल पात हैं। उस फल
को जो कोई अज्ञानसे देवता या मूर्तिक द्वारा दिया हुआ
मानने है, वह व्यर्थ का भ्रम है।

भावार्थ—मनुष्य अपने सदाचारके द्वारा ही- सुख,
सम्पत्ति, पुत्रादिक, कीर्ति वैभवादिकका प्राप्त कर सकता
है। मनुष्य बीस पचास वर्षपर्यंत ब्रह्मचर्यसे रहे और
फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर स्त्रीक ऋतुमती होनेपर ही
समग करें ता पुत्रादिक की उत्पत्ति नियमसे होगी।

क्यों कि ऋतुकाल में ही योग्य सतान उत्पन्न होनेकी शक्ति व्यक्त हो जाती है। ऋतुकालमें ही रज वीर्य अपना कार्य करनेमें समर्थ हो जाते हैं जैसे पृथ्वी जेष्ठमासमें खुब तपकर गरम हो जाती है और उसको खादादिक ढालकर तैयार की जाती है और वर्षाकालके प्रारंभ होने पर जलका संयोग होते ही भूमि फूल जाती है और बीज अंदर पडते ही तत्काल चारों तरफसे बढ़ने लग जाता है और फल देनेकी तैयारी करता है। वैसे ही पशु, पक्षी भी ऋतु कालमें संयोग करनेसे बराबर सतता उत्पन्न करते हैं। ऋतुकी पर्यादाका उल्लंघन करके मैथुनादिक कार्यमें मयुक्ति नहीं करते हैं। इसलिये यह साहजिक प्रमाण सिद्ध बात है कि मनुष्योंके सतानविहीन होनेका कारण उनके अनियमित आहार विहार आदि ही है। जो पृथ्वी मनुष्यों और पशुओंके गमनादिकसे मर्दित हो जाती है उस पृथ्वी पर जल और बीजादिक का संयोग होते हुए भी अकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है, इसी तरह बहुत मैथुनादिक करनेसे योनि रज वीर्य बिगड़ जाते हैं और सतान उत्पन्न करनेके अयोग्य हो जाते हैं। अर्थात् ऋतु समयक बिना स्नासबध करने से और रज वीर्यका असमयमें नाश होनेसे पुत्रादिकका लक्षण न होगा और अनेक राग उत्पन्न होकर शरीरकी व्यवस्था बिगड़कर हानि होगा ही निश्चित है। ऐसी अव

स्थामें कदाचित् सन्तान उत्पन्न भी हो जाय तो कान्ति हीन, बलहीन और अल्पभायुकी धारक ही होगी। जैसे छिन्न मिश्र मार्गमें अकुर निर्बल होजाता है। ऋतुकाळ हानेपर घी की योनि फुली हुई रहती है उससमय रजो धीर्यका सम्पन्ध होनेस अच्छी रूपवान् बलवान्, तेजस्वी सन्तान उत्पन्न हाती है। भावार्थ—पशु पक्षी के अन्दर भी कोई ऐसा नहीं है जिसके सन्तान उत्पन्न नहीं होती है। इसलिये ममयानुसार कार्य करनेसे इष्ट फलकी प्राप्ति अवश्य होती है अर्थात् जो है वह भी सच्च्या धर्म या सधर्म करनेसे मिलती है। क्यों कि ससारमें प्रत्येक कार्यकी सिद्धि मयत्न पूर्वक होती देखी जाती है। इसलिये मनुष्य ही स्वयम् सुख दुःखका कर्ता है। कोई ईश्वर या देवी देवता कर्ता इती नहीं है। यह सममाण सिद्ध हुआ कि समय समय पर मयत्न करनेसे सधर्म बनवाहित सिद्धि हाती है। ससार आजतक ईश्वरक भरोसे रहते हुए अकर्षण्य और आलसी बना रहकर स्वयम् दुःखोंके समूह अपने ऊपर लाद रहा है। इसलिये इस अनुचित और हानिकारक श्रद्धाका त्याग करे एव अपन पैरोंपर खडे रहकर कार्य क्षेत्रमें चतुरना चाहिये, यही युद्धिभक्ता और कल्याणका माग है। ईश्वरने स्वयम् सयोगशील बननेकेलिये आदेश दिया है फिर भी अगर हम उसके भरोसे रह कर अपने कर्तव्यको नहीं करेंगे तो उसका दोष हमारे सिरपर ही रहेगा। इसका प्रमाण पहिले दिया जा चुका है और जब

तक हम भगवदाज्ञाका पालन न करेंगे तो सच्च भक्त भी न बन सकेंगे ।

कादशी मूर्तिर्न पूजनीया

न पूज्या विकृतिमूर्तिं केवल रागवर्द्धिनी ।
शात्मा दर्पणवत्त्वास्ति, सगञ्च लभते यथा ॥५०॥
तथा भवति तत्त्वेन, युक्तिशास्त्रप्रमाणत ।
सतेत्युक्त नृणां सिद्धयै, नैव कस्यापि पक्षत ॥५१॥

संस्कृतार्थः—या हि मूर्ति विकृति = विकाररूपा, केवल रागवर्द्धिनी = रागद्वयवदनशाला सा न पूज्या, यतो हि आत्मा दर्पणवदस्ति, यादृशी सगतिर्लभत, तत्त्वेन = वस्तुतस्तथैव परिणमति, तास्वरूपः भवति इति युक्त्यागमप्रमाणतश्च प्रतीयते, अत विकृत मूर्तिपूजा नैव विधेया सर्वमेतत् सता = ऋषियज्ञेन केवल नृणां सुखासिद्धदुःखपर्यमेवोक्त = प्रतिपादित, न च कस्यापि पक्षपातवशादुक्त ।

WHAT SORT OF IDOL IS NOT WORSHIPPED !

The idol which is deformed one which causes anger in one's mind, should not be used for the soul is like a mirror which resembles a thing placed before it This is proved reasonably by the good for the welfare of men and not being in a party to any one [50-51]

अर्थ—जो मूर्ति विकाररूप है, जिसके देखने मात्रसे रागरूप परिणाम या कषाय के भाव हो उसकी

पूजा नहीं करना चाहिये। क्यों कि आत्मा तो दर्पण के समान है, इसके सामने जैसी वस्तु हाती है, वैसी ही इसकी भी परणति होजाती है, यह बात युक्ति और प्रमाणसे सिद्ध है। जीवोंको अपने स्वरूपकी एवं कल्याणकी सिद्धि हो इसीलिये सत्पुरुषोंने इसका वर्णन किया है, किसीके पक्षपातसे नहीं।

भाषार्थ — इसका अभिप्राय यह है कि सराग अवस्था सर्वथा वर्जनीय नहीं है किन्तु सरागताके पास वीतरागता मात्रना असाध्य है। इसलिये तत् तद् अवस्थाको मान-परक तदनुकूल आचरण करना ही वास्तविक धर्म है और क्रमानुसार सब अवस्थाओंका घाघ हाना अत्यावश्यक है। जो इस प्रकार श्रद्धान नहीं करता है वह न इधरका रहता है और न उधरका है। इसलिये समयलोक सुधर जाय ऐसा प्रयत्नोंका अवलम्बन करना ही श्रेष्ठ है अर्थात् उस २ अवस्थाका मूर्ति सामने रखना आवश्यक है। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ और जन्मावस्था, राज्यावस्था आदि सराग अवस्थाएँ हैं, परन्तु ता भी गृहस्थोंके लिये आदरणीय और पूजनीय हैं और अन्तिम निर्विकार या सन्यास अवस्था जो है या दीक्षा कल्याणकके आगे जितने भी कल्याणक हैं वे ही मनुष्यमात्रका ध्येय होना चाहिये।

पूर्वोक्तमेव समर्थयति

यावत्तोऽनो हि पृच्छामि भार्यापुत्रघनादिकाः ।
 दीयन्ते यदि दये कौ, किमर्थं क्रियत घृथा ॥५२॥
 विद्याहृष्यवसायादि प्रयोगश्चौपधादिन ।

संस्कृतार्थः—पूर्वोक्त निष्कामोपासनारूपमर्थं प्रकृता तरेण समर्थवसाह यदि देवेभ्य याचनाः, एव भार्वापुत्रधनारिका प्राप्य युस्तदा भार्वायै विशाहस्य, धनार्थं व्यवसायस्य, आरोग्यार्थं=औषध प्रयोगस्य च का आवश्यकता भवेत् ।

I question to the persons who ask in this way If a wife, a son, wealth, etc. are granted by gods in the world what is the purpose of a marriage, business, medicine and other things for which they strive ? [52]

अर्थ —मूर्ति या देव कुछ दते नहीं इसी बातको स्पष्टतासे समझाते हैं कि-इ भाई ! मूर्ति से मांगनबाह यदि देवता लोगोंका भार्या, पुत्र, दे सकें तो फिर विवाहकी क्या जरूरत ? यदि वे धन दे सकें तो फिर व्यापार व लघमकी क्या आवश्यकता ? लोकमें देखा जाता है भार्या, धानादि, अपने २ सपायरूप लघमसे ही प्राप्त होते हैं देवोंसे नहीं । इसलिये इन वस्तुओंकी, या किसी प्रकार की भी याचना मूर्ति या देवसे करना ठीक नहीं है ।

भार्यार्थ—इसका वर्णन पूर्व मकरणमें विस्तारसे किया गया है । इसलिये सप्तपसे इतना ही समझना चाहिये कि देवी देवतादि कोई भी सुख दुःख देनेमें समर्थ नहीं हैं । सुख दुःख तो स्वयं किया हुआ पुण्यपापसे मिलता है । इसलिये पाप छोड़करक पुण्य करना चाहिये जिससे सब सुख संपत्ति मिलेगी ।

सत्यार्थदर्शन

इस प्रकार मूर्तिपूजाका हिताहित बणन किया गया ।

मूर्तिनिषेधका कारण अथवा मूर्ति न माननवालोंका तर्क है,

चिदम्बनाधिक दृष्ट्वा, कैश्चिन्मूर्तिनिषिष्यत ॥५३॥

सर्वथा प्रतिमाऽप्राद्या ज्ञानहीनेन किं फलम् ।

तदारोकनिवृत्त्यर्थं युक्तियुक्ताभिहास्यत ॥ ५४ ॥

संस्कृतार्थः—मूर्तिमोहवशगता कश्चन नानावेषविरचनरूप मूर्तिविदम्बनं कुर्वति, तद्दृष्ट्वा कैश्चिद् सर्वथा मूर्तिनिषिष्यते यत अज्ञानक्रियाया किं फलं भवति? इति येऽभ्यन तेषामारोका निवृत्त्यर्थं युक्तियुक्तमप्रोष्यत ।

ADVICE TO THOSE WHO DO NOT ACCEPT IDOL-WORSHIP

Some men condemn the idol when they see mockery of the idol by some people They say to all others ' What good will come of the thought less performances ? The idol is not to be accepted at all " But here I have to say something (53 54)

अर्थः—अनक व्यक्ति मूर्ति या सांसारिक वस्तुओंस पाहित हुए, मूर्तिक नाना प्रकारके बेष बनाकर उसकी विदम्बना करत है, रागोत्पादक वस्त्रालंकार आदिसे समाकर पूजा करते हैं इस बातका देखकर कई व्यक्ति सर्वथा मूर्तिपूजा का निषेध करते हैं कि मूर्तिक साथ इन अज्ञान क्रियाओंस क्या फल हो सकता है । इसलिये

सर्वथा ही मूर्तिको नहीं मानना चाहिए, ऐसा कहनेवालों के प्रति भी युक्तियुक्त बातको कहता हू ।

भावार्थ — पूर्वोक्त प्रकार लोकोपकारी पुरुषोंकी अवस्थाओं और पावों कल्याणकोंकी मूर्तिको छोड़कर जो अनेक प्रकारकी विद्रूप मूर्तोंकी पूजा बदन करके उसके सामने खड़े होकर अनेक प्रकारकी याचना करते हैं वे अपने पैरपर आपही कुल्हाड़ी तो मारत ही हैं, लेकिन साथ ही साथ आत्मशांति और विश्वशांतिका घात करते हैं । मूर्ति किसकी और कैसी होनी चाहिए और उसकी पूजन बदन क्यों आवश्यक है । इस प्रकार निर्णय किये बिना कल्पित मूर्तोंकी पूजा बदनमें प्रवृत्ति करना व्यर्थका परिश्रम होगा । मूर्तिपूजाका उद्देश तो सिर्फ इतना ही है कि उस मूर्तिमन्तके गुणोंका अपन हृदयमें संचार करना है । इसलिए उन अवतारी पुरुषोंकी मूर्ति ही पूज्य है कि जिन्होंने लोकोत्तर कार्योंक द्वारा आत्म शांति और विश्वशांतिका अपनाया हो । इसलिए उन अवतारी पुरुषोंके द्वारा अबलम्बन किया हुआ पथ हमारे लिए आदरणीय और ग्राह्य है ताकि हम भी आत्मशांति के साथ २ विश्वशांतिमें हाथ बटा सकें । इसके बिना सय व्यर्थ और विटम्बना है ।

मूर्तिपूजा का उचित उपाय व स्वरूप

नाति विडम्बन कार्य, निषेध्या प्रतिमापि न ।

किंतु निर्विकृतिर्मूर्ति, विश्रात्यर्थं प्रमोहिनाम् ॥५५॥

स्थाप्या वन्द्या स्वनिष्ठानां मृत्यावदयकतास्ति न ॥

इति ज्ञात्वा जनैः पाल्या, रीतिरुक्ता प्रशांतये ॥५६॥

संस्कृतार्थ — प्रतिभाषा, चित्रविचित्राख्य विदम्बन
न करं न च, सर्वथा मूर्तिनिषेध कर्तव्य, किंतु मोहपतित
व्यक्तानाम् विग्रहाद्यर्थ=आत्मदाभार्यं, निर्विकृति=निर्विकारा, सा
विकी मूर्ति स्थाप्या, प्रतिष्ठातव्या, सैव वन्द्या, स्वात्मनिष्ठानाम्
आत्म येष निमग्नानाम् कृत तु मूर्तिस्थापनाया आवश्यकता एव
नास्ति । इति ज्ञात्वा जनैः=लोकैः शान्तयर्थं उक्ता रीति मध्यपद्धति
निर्विकारमूर्तिपूजाख्या, पाल्या=पालनाया ।

'There should be no mocking of the idol worship by putting on it a strange dress It should not at all be condemned The idol should be established as one which represents the unchangeable supreme deity with the intention of securing peace by even a perplexing person It should then be adored A person who is engrossed in his soul and who requires no such means may not worship the idol Knowing this a fortunate being should accept the right way by which it can obtain peace. (55-56)

अर्थ—पूज्य मूर्तिकी चित्र, विचित्र वेष भूषा करना कर विदम्बना नहीं करना चाहिये, किंतु पोही जीवोंको भी शांति प्राप्त हो इस प्रकारके निर्विकार स्वरूपवाली मूर्तिकी स्थापना करना चाहिए और उसको वन्दना करनी चाहिए, और जो व्यक्ति आत्मस्वरूपमें लवलीन हो चुके-

हैं और जिन्हें ऐसे किसी सहारेकी जरूरत नहीं है उनको मूर्तिपूजाकी भी आवश्यकता नहीं है । ऐसा जानकर भक्त्योंको वही उचित रीति स्वाशर करनी चाहिए जिससे कि शांतिव्याप्त हो।

सारांशः—जो लोग मूर्ति नहीं मानते हैं या उसको खाकी निष्प्रयोजन कार्य समझते हैं उनको मोटी बुद्धिपर इसी आये बिना न रहती है। उनसे यह अनुरोध करूंगा कि वे इस पर ठन्डे दिळसे विचार करें।

ससारमें आज तक मूर्तिके बिना न कोई काम हुआ है और न होगा। जितने भी पुरुष बिगड गये हैं या सुधर गये हैं तो सिर्फ एक मूर्तिके द्वारा ही। मूर्तिक अरु लम्बनके बिना भाणरक्षण करना कठिन ही नहीं परन्तु असम्भव हो जायगा। इसका कुछ दृष्टान्तोंके द्वारा स्पष्ट करते हैं। जैसे किसी सुंदर बेश्याका चित्र व्यवसायकन करने मात्रसे मनमें विकार उत्पन्न हो जाता है, किसी भयकर देवी आदिका चित्र देखनेसे भय पैदा हो जाता है। किसी घोडाका चित्र देखनेसे धीररम उत्पन्न हो जाता है और भी रमणक पदार्थोंके देखनेसे तादृश परिणाम हो जाते हैं। इस प्रकारसे किसी महान् भाग्य शाली, परम धीतराग, परम हस, आत्मनिष्ठ, सर्व सग परित्यागी, निस्पृह, शान्तमुद्राको धारण करनेवाले महात्माके चित्रका देखनेसे तद्दत् आचरण करनेके भाव ही जाते

हैं यह सद्य जड पदार्थ होनेपर भी मनुष्यका हित अहित परते हैं, मूर्ति जड है, जडकी पूजा, बदना करनेसे क्या लाभ है ? कोइ र तो यहाँतक कह दते हैं कि पत्थरकी मूर्तीकी पूजा करनेसे मनुष्य भा पत्थरके समान हो जाता है और मूर्तीको भी तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। ऐसे सारहीन विचारवालोंकी शुद्धिपर तरस आती है। ससार में जितने भी प्राणी हैं जडके सयोगसे ही जीवत हैं। उस के वियोग होनेपर तुरन्त मरणको प्राप्त हो जाते हैं। दूध, चाय व अन्य भोजनादिक सामग्री जड हैं। चायके अमाचमें बहुतसे मनुष्योंका सिर चढ जाता है, अगर एक दिन भोजन न मिळ तो दूसरे दिन बिस्तर पकटना पड जाता है। मादक पदार्थोंके सेवनसे ज्ञान सकृचित हा जाता है। जैसे शराब आदि। यहाँतक कि इनके सेवनसे मनुष्यको पागळ ही जाना पडता है। विषक भक्षण करनेसे मृत्युतक हो जाता है सोना मळकी परदका तेळ खानेसे विरेचन हो जाता है और अधिक मात्रामे खा लिया जाय तो इन सबके जड होनेपर भी बिस्तर भी पकड छेना पडता है घृत, खुग्घ, बादाम, पिस्ता आदिके भक्षण करनेसे शरीरमें घळपृद्धि होती है और आराग्यता पडती है, हीरा, मोती, सोना, चांदी जरीके और रेशमी वस्त्र जड होनेपर भी मनमाहक हैं और ताम्बा, पीतळ लोहा जीर्ण वस्त्रादिक मूर्तिक और जड होनेपर भी मन मोहक नहीं हैं। ये सद्य प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

कहाँतक कहा जाय * जटपदार्थोंकी शक्ति अचिन्त्य है। विज्ञान द्वारा उत्पन्न होनेवाले धोम्य, गोळा, जहरीली गैस ये सब जट पदार्थ हैं। इनकी शक्तिसे आज ससारमें कितना विध्वंस हा रहा है। इनके सदुपयोगसे मनुष्य सुखी होता है। इनके दुरुपयोगसे मनुष्य दुःखी होता है। इनके अलावा धोड़ी, सिगारेट, तबाकू, गाजा, भग चरस आदि मादक पदार्थोंक सेवनसे देशविदेशमें मनुष्य निकमा और आलसी, दरिद्री बन जाता है, मय कि चावल, उदद, चना, मूग आदिके सेवन करनेसे मनुष्य स्वस्थ रहकर आत्महित और परहितमें रत हो जाता है दर्पणको देखन से मुख सुदर बनानेका विचार हा उठता है। उपरोक्त समस्त पदार्थ जट और मूर्तिक होत हुए भी इनक साथ सयोग सम्बन्ध हाजानेस मनुष्यकी विचारधारामें अनकानेक परिवर्तन हा जाते हैं। इसी प्रकारसे अबतारी पुरुषोंकी किसी भी अवस्थाकी मूर्ति देखें हमारी विचार श्रृंखला भी तदनुकूल ही प्रवृत्ति करेगा। स्कूलक अन्दर भी बच्चोंको पदार्थोंका ज्ञान चिजोंद्वारा ही कराया जाता है। शाखोंमें जो अक्षर होते हैं वे भी एक प्रकारक चिज ही हैं। उनके अध्ययन करनेसे हमारे ज्ञानमें वृद्धि होती है व वक्ताके भावको भी उन अक्षरों द्वारा हम जानलेते हैं और कहीं २ जो बड़े २ नेता हो गये हैं उनका स्टैच्यु [Statue] याने मूर्ति बनाकर गांव या शहरके मध्य भागमें या और किसी जगह रखी जाती है

ताकि आमजनता उसको देखकर उसको लोकाहितके कार्योंकी तरफ दृष्टिमान करे। जैसे देहकी आदि में महा रानी विह्वलोरियाका या स्वर्गीय महारान चीकानेरका स्तम्भ (Statue) मौजूद है यदि अपने घरमें अपन माता पिताका चित्र होवे और कोई उसका अपमान करे तो हृदयमें कापका वेग उत्पन्न हो जाता है। क्यों कि इससे दिखमें ठेस पहुँचती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत्सारमें सब मनुष्योंका किसी न किसी रूपमें मूर्तियोंको माननसे ही कल्याण होता है और न माननेसे अकल्याण। क्यों कि इसका बिना काम चल नहीं सकता है। परन्तु मूर्तियाँ उन ही अवतारी पुरुषोंकी मानने और पूजन योग्य हैं कि जिन्होंने अपनी शुभ कृतिके द्वारा लाकात्तर कार्य करके सत्सारेमें स्वयम् आदर्श रूप बनकर सुख और शान्तिका साम्राज्य स्थापित किया हो। ऐसे पूज्य पुरुष ही हमारे आराध्य देव हो सकते हैं। अन्य विद्रूप मूर्तियाँ कदापि मानने पूजने योग्य नहीं। क्यों कि वह उद्देश्य शून्य हैं। इसलिये तीर्थकरादिक सब अवतारी पुरुषोंकी जिन्होंने इस भूमि और अपनी आत्माको पवित्र बनाया है उनकी सब अवस्थाओंकी मूर्तियों जीवन्मुक्त अवस्था पर्यन्त माननीय और पूजनीय हैं। उनकी पूजादिक करनसे विषय कषायसे दृष्टकर गुणधितबनमें रत होनेसे महान् पुण्यका उपाजन होता है। इसलिये निर्दिष्ट सिद्ध होता है कि मूर्तिपूजा मानवोंका प्रधान कर्तव्य है और उनकी

पूजन अपने दीप, धूप, पुष्प फलादिक शुद्ध द्रव्यों से ही होना चाहिए ।

यहापर इतना और भी विशेष समझ लेना चाहिये कि वेदमें और गातामें मूर्तिपूजाका विधान दो प्रकारसे किया गया है। एक सगुण मूर्तिपूजन और दूसरा निर्गुण मूर्तिपूजन सगुण मूर्तिपूजन अवतारी पुरुषोंका हुआ करता है। क्यों कि अवतारी पुरुष तामस, राजस व सात्विक गुणोंसे युक्त रहते हैं। इसलिये उनकी मूर्ति भी तत्तद्गुणोंसे युक्त होनेके कारण अस्त्र शस्त्रादिकसे युक्त भी देखी जाती है। एव आश्रम भेदके अनुसार भिन्न भिन्न आश्रमोंके परिज्ञान कराने लिये उनकी मूर्ति बनाई जाती है। यह सामान्य श्रेणीके लोगोंको मूर्तिमान्के उपादेय गुणोंसे परिचित करानेके लिए है। परन्तु निर्गुण मूर्तिपूजनमें साक्षात् निरजन निराकार परमात्माकी प्राप्तिका ही ध्येय है। जैसे साक्षिग्राम, शिवलिंग आदिके आकार तामस राजसादिक गुणोंकी अवस्थासे विरहित है। अतः उसमें अतिम ध्येयका ही साध्य करना चाहिए। इसी प्रकार यह भी खुलासा किया गया है कि अवतारी पुरुष ही तामस राजसादि गुणोंसे युक्त होनेके कारण सृष्टी आदि की रचना करते हैं। परन्तु निरजन निर्बिकार परमात्मा सृष्टी आदि कार्यमें नहीं पड़ता है। क्यों कि वह निरजन, मुक्त व कृतकृत्य है। अवतारी पुरुष तामसादिक गुणोंसे विशिष्ट होनेके कारण मुक्त व कृतकृत्य नहीं है। इसलिये

उन्में ही कर्ता और इर्तापनेका समब हा सकता है । निरजन निर्विकार परमात्मा जो निर्गुण (तापस राज सादिक गुणोंसे रहित) के नामसे कहा गया है उसमें यह सब सांसारिक कार्य समब नहीं हा सकता है । इस रह स्पको समझकर मूर्तिपूजाके भेदको समझ लेना चाहिये ।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद व गीतादिक ग्रंथोंने भी मूर्तिपूजाका समर्पन ही किया है ।

सूरेः श्री कुन्धुसिंघोश्च स्वात्मनिष्ठस्य धीमत ॥

पक्षपातविमुक्तस्य, भावोऽस्ति विश्वतारकः ॥५७॥

सस्कृतार्थ — स्वात्मनिष्ठस्य = निस्पृहस्य, पक्षपातविमुक्तस्य = रागद्वेषरहितस्य श्री कुन्धुसागराचार्यस्य, अयमेव विश्वतारक = ससारकल्पणकारक भाव = अमिप्रायाऽस्ति ।

This is the world liberating opinion of "Nhree (Kunthusagar) the wise preceptor, who is engrossed in his soul and who is void of partiality All persons should try to understand the truth of idol worship [57]

अर्थ — आत्मनिष्ठ, निस्पृह, पक्षपातरहित, परम बुद्धि मान् श्री कुन्धुसागराचार्यका यही अभिप्राय है कि विश्वका उद्धार हा, सब सत्यके ही स्वरूपको समझनेकी चेष्टा करें ।

सारांश — इस प्रकार आचार्यवर श्री कुन्धुसागरजी स्वामीका यही सहेइय है कि विश्वक सभी जीव भेदभाव की बुद्धि छोटकरके आपसमें बहुत ही प्रेमक साथ माणी रहे और आत्मशान्ति और विश्वशान्तिको अपना अन्तिम ध्येय निर्धारित करें और प्रतिमापूजाक द्वारा अपना आत्मकल्याण करें ।

विशेष ध्यान देने योग्य विषय

सारास्य — चाहे कृत्रिम प्रतिमा हो चाहे अकृत्रिम प्रतिमा हो सन सब प्रतिमाओंका पूजन प्रतिदिन सक्षेपस पचकल्याणक विधिसे ही करना चाहिए जिससे भगवान् की सब अवस्थाओंका बोध हो जाय। इसके बिना पूजन प्रक्षालन बनता ही नहीं है। क्यों कि प्रक्षालन जन्म और राज्य अभिषेक समयमें ही हुए हैं और यह युक्ति युक्त आर्षमार्ग है। कवलज्ञान और निर्वाण कल्याणकर्म आभियेक नहीं है। इसलिये जहां अभिषेक है वहां बाल्यावस्था ही है। वह अभिषेक चाह जल या दुग्धादिस हो अथवा चरणों वा शरीर पर फूल केशर आदि चढाना हो तो वह सब घाल्य अवस्था ही समझना चाहिए। पूजनके पहिले अभिषेक करना तो जरूरी है और वह आभियेक आदि करनेकी अवस्था जो है सो घाल्य अवस्था ही है। और अभिषेक व शान्तिधाराक बाद भगवान्को 'सर्वग स्वच्छ ययाजात अर्थात् निर्लेप करके वेद्यापर विराज करके जो पूजन की जाती है वह केवलज्ञान व निर्वाण अवस्थाकी पूजन समझना चाहिए। यही आर्षप्रमाण और युक्तियुक्त है। इसके सिवाय जो लोग प्रतिमाका पूजन अलग व तीर्थकरका पूजन अलग २ मानते हैं वह युक्तियुक्त और आर्षमार्ग नहीं है। क्यों कि इस भूतलपर तीर्थकर भगवान् ही जगत् और आत्मकल्याण करनेके लिए प्रमाणभूत हैं। इसलिये तीर्थकर भगवान्की जितनी अवस्थाएँ हैं गौण व मुख्य रूपसे सन २ अवस्थाओंका बोध करानेके लिए चाहे कृत्रिमप्रतिमा हो चाहे अकृत्रिम

हो उनका प्रक्षाल, पूजन, भक्ति करना चाहिए । इस विधीके बिना जो पूजन करगा वह सत्यसे फासों दूर रहगा तथा आत्मकल्याण और विश्वकल्याणसे वंचित रहेगा । क्योंकि तीर्थंकर के सिवाय और कोई प्रमाण नहीं है । मूर्ति जो बनाई जाती है वह सत्य तीर्थंकरका ही प्रति कृति है इसीलिए इसी पञ्चकल्याणक विधिसे ही पूजन करना चाहिए । यदि कोई शका करे कि जिस प्रकार मुनियोंका पाद प्रक्षालन करनेमें वस्त्र छगनेसे ध्यान निर्दोष है, इसी प्रकार वीतराग भगवान्का प्रक्षालन करने या वस्त्रसे पोंछनेसे कोई दाप नहीं है । ऐसा जो कहत है वह गलत है । क्योंकि मुनि महाराजोंके वस्त्रका त्याग नहीं है तथा भगवान्की भी बाल्य अवस्थामें यह त्याग्य नहीं है । प्रक्षालन या पोंछादिसे पोंछना इस समय विधय ही है । किंतु कवचज्ञान व निर्वाण अवस्थामें तो इन बातोंका निषेध ही है अथवा असम्भव है । इसलिये मुनियोंके पाद या शरीर आदिके पोंछनपर भी जैसे मुनि पवित्र है, इसीप्रकार वीतराग अवस्थाके भगवान्का प्रक्षाल व पूजन करनेसे उनकी वीतरागता नष्ट नहीं होती यह कहना विध्या है । क्योंकि भगवान्के ता सर्वथा त्याग हों गया है और मुनियोंके त्याग नहीं हुआ है । इसलिये भगवान्को निर्दोष ही रखना चाहिये । यही आर्पोविधि और मुक्तियुक्त है ।

इति श्री आचार्य कुन्धुमागरविरचित सत्यार्थदर्शन ग्रन्थमें

द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ।

END OF THE SEVENTH CANTO.

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।



नत्वा निरजन भक्त्या, विष्णु बुद्ध जिन सदा ।
सञ्जैनाजैनशब्दार्थं, कथयामि प्रमाणत ॥ ५८ ॥

संस्कृतार्थः—निरजन=निर्विकार, विशति छद्मीय तरग
बहिरगरूपा इति विष्णुस्त, बुद्ध=प्रबुद्ध, जिन=क्रोधादिकषाया
न्पञ्चेन्द्रियविषयोश्च जपतीयेषु शील, सदा सर्वदा भक्त्या नत्वा
नमस्कारय, जैनश्चाजैनश्च जैनाजैनी तयो शब्दार्थस्त, सत्यरूपण
तदर्थं प्रमाणत कथयामि=निरूपयामि ।

FORTH CANTO

Having bowed always to the blameless God
Jina, who has conquered all the enemies in the
form of anger, etc and who is the lord of
'richness and success, I distinguish the word Jain
and ' Non Jain ' evidently [53]

अर्थः—निर्विकार, अतरग बहिरग छद्मीके स्वामी
विष्णु स्वस्व परमज्ञानी, क्रोधादि कषाय तथा विषयो
को जीतनेवाले, जिन भगवान् को नमस्कार करके प्रमाण
पूर्वक जैन व अजैन शब्दकी समीचीन व्याख्या करता हू ।

भाषार्थः—प्रचलित रूढी व प्रमाणसे जैन अजैन शब्द
जो व्यवहारमें आता है वह वास्तविक नहीं है । आगे इस
का स्पष्टीकरण करते हैं:—

व्युत्पत्तिर्जैनशब्दस्य, भवत्येष जिघातुत ॥
कोऽपि व्यक्तिविशेषोऽय, नेति सिद्ध प्रमाणत ॥५९॥

तथाप्यज्ञानत केचिद् जैनास्तेति ब्रुवन्ति च ॥

अजैना स्मरन्ततो तैश्च सम्बन्धो नास्ति कौ समम् ॥६०॥

अजैना स्मरन्ततो तैश्च सम्बन्धो नास्ति कौ समम् ॥६०॥

संस्कृतार्थ — जैन शब्दस्य व्युत्पत्ति = सिद्धि, जि धातुत
भवति । “जैन” इति शब्द कस्मिंश्चिद् व्यक्तिविशेषे, सम्प्रदाय वा
रूढौ न वर्तते इति प्रमाणत सिद्धोऽस्ति ; तथापि अज्ञानत
ब्रुवन्ति = प्रकृत्या अमी [ते] जैना वयम् च अजैना द्वि-निश्चयेन
कौ=इह, ते = जैने अजैनैश्च सम कापि संबन्धो नास्ति इति ।

The word 'Jina' is derived from the root 'Ji' meaning to conquer. The word does not apply to a particular being or cast or community. This is proved with evidence. Yet some ignorant persons say 'These are Jains and we are non-Jains. There is no relation of us with them in this world !' [59-60]

अर्थः—‘जैन’ यह शब्द ‘जि’ इस धातुसे बना है, किसी व्यक्ति, जाति, या सम्प्रदाय विशेषके लिए ही यह शब्द रूढ नहीं है, तो भी कितने ही लोग अज्ञानसे कह देते हैं कि वे तो जैन हैं और हम अजैन हैं । उनसे हमारा यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं इत्यादि । किंतु यह भ्रान्त कल्पना है ।

भावार्थः—चाहे जैन हो या अजैन हो, मनुष्य जाति एक ही है जो जीते तो जैन हैं । किसको जीते ? माया और पाहको । यह शब्द किसी समाजविशेषके लिए ही व्याप्ति रूपसे लागू नहीं है । परन्तु इसके अर्थकी विषाकता

व्यापक और सार्वभौम है। सकुचित नहीं है। क्यों कि—

जैन अजैन शब्दों की योजना

रागद्वेषादिमुक्तव्याघेपां जिनोऽस्ति देवता ।
ते जैनास्तत्त्वतः सन्ति, पक्षपातविवर्जिता ॥ ६१ ॥
पूर्वोक्तलक्षणाद्वाद्यास्तज्जैना घोषवर्जिता ।
ज्ञात्वाति मूढतां मुक्त्वाऽमूढाःस्यु सौख्यदामिध ॥ ६२ ॥

संस्कृतार्थ — रागद्वेषविवर्जित जिन एव येषां देवत एव पक्षपातादिदोषवर्जिता विवेकिनस्तस्यत जैना भवति, “जिनो देवो यस्य इति विग्रह “तस्य देवता” इति सूत्रेण अणु विधानात् व्याकरणशास्त्रानुसार सिद्धथापय शब्द ।

अस्माच्छ्रुणाद्वाद्या बहिर्भूता येऽविवेकेन अवोधोपहता सत , यदा तदा रूपिण दशमास देव म प ते त एव अजैनाः, इति ज्ञात्वा मूढतां=अज्ञान, मुक्त्वा, मिध परस्पर, सौख्यदा सुखदा यिन , अमूढा=सदसद्विवेकविशिष्टा स्यु मयेयु ॥

DEFINITION OF THE WORDS

JAIN AND NON JAIN

Men whose God is 'Jina' who is void of feelings like anger hatred, etc and who do not observe partiality, are really 'Jains'. Those who 'worship' through ignorance a deity which possesses anger, hatred, etc are said to be Non Jains. Knowing this, leave ignorance and have right knowledge which brings happiness to all of us (61-62)

अर्थ — रागद्वय रहित, वीतराग "मिन" दबकी
 अथवा रागद्वय रहित सप्त दबकी का उपासना करने
 है व ही वास्तवमें सर्वादिष्ट जैन हैं । यह पञ्चवातर-
 हित व्याख्या है । और जो इससे विपरीत कथायसं
 विषयादि छद्मज्ञान अनेक विद्वन्नाशास्त्र दबकी उपासना
 अज्ञानपूर्वक करते हैं व ही अज्ञेय हैं । इसलिये अज्ञानका
 छोटकर परस्परमें गुण्यदारी और विवेकी बनो ।

मायाय — जैन ब्रह्म हा सक्तता है जो भगवानके
 पाँचों कल्पानकोंका और चार ही प्रकारके आश्रयोंको
 प्रमत्ते वस २ अवस्थानुच्छन्नता विनय, भाद्र सत्कार
 आदि करता हा और अन्तमें अपन का कृष्णकृत्य बननेकी
 इच्छा रखता हा । वसका ज प पाद रुद्धिबधिरित जैन
 ज्ञानिमें हो या अथ ज्ञानिमें । जो इस प्रकार भ्रष्टान नहीं
 रखता है वह सत्त्वा जैन नहीं है और भी विश्व
 भाग दक्षिण ।

विवाक्षपक्षपातादीन्, मोहादीन् दुःखदान् मदा ।
 जयन्ति यत्नता ये तः जैनाः प्राक्ता दयापराः ॥ ६३ ॥
 पूर्वोक्तदृश्याद्वाशास्त्रेऽजैनाः सति सत्त्वतः ।
 ज्ञात्वा मादृशेषु जित्या, जैनाः स्युः शर्मशामिप ॥ ६४ ॥

संस्कृतार्थ — विव=वन, अथ=शर्मन(सप्तप्राणवम-
 धोमनि पञ्चेन्द्रियाणि, तत्र, पक्षपातादीन्=

तान्=दुःखदायकान् ये सदा यान्ता जयन्ति=विजयते, वर्शान्कुर्वन्ति
 ते दयापरा कर्तव्याः शीला जैना प्रोक्ता ये उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः उक्ताः
 यक्षरागद्वेषवशात् त निश्चयतोऽ, जैना इति विचार्य मोहनिपु
 जिवा, मिथ परस्पर, शर्मदा =सुखसाधका जैना स्यु =मवयु

Men who conquer anger, hatred etc which always give misery and which go with the organs of senses, such as mind eye, etc are said to be 'Jains' who are very kind to all

Men who are void of the above mentioned things and who are the servants to organs of senses and who are cruel are said to be 'Non Jains' So conquer the enemies in the forms of anger, hatred temptation etc be happy and be Jains in the true sense [63 64]

अर्थः—जो व्यक्ति, दुःखदायक मन और पाँचों-इन्द्रियों के पक्षपात, रागद्वेष और मोहको पत्नपूर्वक जीतते हैं, सब जीवों पर दया करते हैं, वही जैन कहे गये हैं। जो इस छल्लणस बाह्य हैं, मन और इन्द्रियोंके दास हैं और निर्दयी हैं वे तो अजैन हैं। इसलिये मोहशत्रु को जीतकर परस्परमें सुखदायक सच्चे जैन बनो।

भाषार्थः—सच्चा जैन बननेकेलिये अपने मन और इन्द्रियोंको बशमें रखना होगा और राग, द्वेष, पक्षपात, निन्दा, ईर्ष्या आदिका उठाकार फक देना होगा। सब जीवोंके साथ मैत्रीभाव रखना होगा और सभीके हितकी

कायना करनी होगी और मोहकी धृखळाको भी तोटना होगा ।

ये येनाशेन रागादीन् पक्षपाताद्भवति च ।

ते तेनाशेन जैनाः सुधुः कौ विध सौख्यशान्तिदा ॥६५॥

य येनाशेन रागाधा, पक्षपातादिकीलिताः ।

ते तेनाशेन मूढाः स्युरज्ञैनाः सु खभाजना ॥ ६६ ॥

संस्कृतार्थः—य छलु जना, येनाशन रागादान् पक्षपातान् जयति विध सौख्य, शान्ति च दरति त तेनाशनैव जैना सु, ये च येनाशन रागेन=माहेन अज्ञाननिपादितनयना, पक्षपाताद वशगता भवन्ति त मूढाः दु खभाजनास्तनाशनान् जयति ।

Men who conquer anger, etc become Jains proportionately as they conquer anger etc They become happy in this world But men who have become blind with anger, etc and who are thus ignorant to a great extent are Non Jains and who suffer from miseries (65-66)

अर्थ —जो प्राणा जितने अशोभे राग, द्वेष, पक्षपात आदिक दुर्गुणोंका जीत छने हैं और परस्परमें सुखशान्ति का संचार करत हैं, वे ही जैन हैं और जो प्राण जितने अशोभे रागाध है, पक्षपात आदिकसे कोहित हैं मानरहित हैं, वे दुःखके पात्र अज्ञेन हैं ।

सारांश —प्रत्येक मनुष्यमें जिने अशोभे राग, द्वेष, पक्षपात, अत्याय, परनिन्दा, जुगळी, घादी आदि कम हैं उतने अशोभे बढ़ जैन ही है । घादे वा अपनेको जैन न

माने और जितने अशोभे य विद्यमान हैं उतने अशोभे भजन हैं। जहां विषय कषाय आदिपर विजय प्राप्त कर ली जाय वहां जैनत्वका सद्भाव है ही। इसके विपरित्त जितने अशोभे उपरोक्त दुर्गुणोंका सद्भाव है उतने अशोभे अजैनत्व है, चाहे वह अपनेको जैन मानता रहे।

क्षमादिसैन्यद्वारेण, सपूर्णारीञ्जयन्ति ये ॥

जयन्ति चार्थतो जैना, वे भवन्ति जिना शिवा ॥६७

सर्वेषां द्वेषरागाणां, वश यान्त्यव य जना ॥

तेऽजैना तत्त्वत सन्ति, भ्रमन्ति भवकानन ॥६८॥

संस्कृतार्थः—ये खलु जावा, क्षमादीनां गुणानां सै य बलात् सर्वान् क्रोधादिशत्रून् जयति, अर्थत = वस्तुस्वरूपतश्च ये जयति ते एव जैना भवन्ति, भविष्य च शिवा जिना भवति, ये च हि सर्वेषां द्वेषरागादिदुर्मावानां वश याति ते तावत, अजैना भवकानने भ्रमन्ति।

The soul which conquers all the enemies such as anger, etc with the help of the army in the form of forgiveness, are Jains, and as they get right knowledge are true Jains They are liable to become 'Jina' (God) who is benevolent

Men who are servants to all vices such as anger etc are really speaking Non Jains and they wander through hell (67 68)

अर्थ—जो आत्मा क्षमा आदि गुणोंकी 'सेनाके बल से सपूर्ण क्रोध, मान आदि शत्रुओंको जीतते हैं तथा वस्तु

स्वरूपके ज्ञानके कारण जो जयशील है, वे ही जैन हैं,

तथा भविष्यमें परम कल्याणकारक परमशिव जिन हो जाते हैं । किंतु जो मनुष्य राग, द्वेष, क्रोध आदि दुर्भावोंके वश हो जाते हैं वे ही दुःखके पात्र होकर इस ससारमें परिभ्रमण करते हैं । जैन होनेपर भी व अजैन है ।

भावार्थ—जो मनुष्य समीचीन आत्मिक गुणोंके द्वारा पदरिपुओंको जीत लेता है तथा वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्राप्तकर लेता है वही जैन है तथा अन्ये अन्ये अपनी आत्मामें उन गुणोंका संचार कर लेता है तभी जैनत्वकी परिपूर्णता है । परन्तु जो मनुष्य इसकी विपरीत जो अनेक प्रकार की दुर्भावनाओंके वश व इन्द्रिय विषय कषाय, ममाद आदिके वश होकर अन्याय, अत्याचार, पापाचार में रत हो जाते हैं व ही जैनत्वसे यादिर अजैन है ।
द्विविधा निश्चिता जीवा कौ जैनाजैनभदत् ।

एत कृत्वा भेदे च सर्वे जीवा समागता ॥ ६९ ॥

ज्ञात्वेति प्राणिमात्रा कौ जैना भवन्तु निस्पृहा ।

यतः स्यान्मोक्षसिद्धिश्च शान्तिराचद्रतारकम् ॥ ७० ॥

संस्कृतार्थ — कौ=शुचिम्बा, जीवा द्विविधा, एव जैनाजैन भेदात् । अनयो भेदयोरेव सर्वेषाम् जीवानाम तर्मावात्, इति ह्यस्या सर्वे प्राणिन निस्पृहा =निर्विकारा, शान्तरागा जैना भवन्तु यत मोक्षसिद्धि स्यात् यावच्चन्द्रदिवाकरो च सुखे शान्ति स्यात् ।

All men in this world are divided in two groups Jains and Non Jains. In these two groups

all beings are included Knowing this all beings should become Jain , free from any worldly ties You will get final liberation and success in this way Peace will rule over earth as long as the sun and the moon shine in the sky [69 70]

END OF FOURTH CANTO

अर्थ—ससारमें दो ही प्रकारक जीव हैं, जैन अजैन । इन दो विभागोंमें ही सब जीवोंका समावेश हो जाता है, ऐसा जानकर सभी प्राणि निस्पृह निश्चल जैन बनो, जिससे कि तुमको माक्षकी सिद्धि हा आर जबतक सूर्य चद्रमा है, तबतक पृथ्वीपर शांति थी रह ।

भावार्थ — इसलिये प्रत्येक मानवको सच्चा जैन बननेका आवश्यकता है। जैन बननेका मतलब सिर्फ इतना ही है । जो मतमतान्तर पक्षपातादिकका दूर करता हा और जितेंद्रिय बनकर सारे विश्वको स्वतंत्र बनानेकी दृढ भावना रखकर शक्तिअनुसार तद्वत् कार्य करता हा और अपनी आत्माको कृतकृत्य बनाना चाहता हो वह सच्चा जैन कहलाता है । इससे निश्चित होजाता है कि ससारमें जैन और अजैन दो ही भेद हैं । जो विश्वकल्याण और आत्महितमें लगा है वही जन है और इसके विपरीत सब अजैन हैं ।

॥ इति आचार्य कुशुसागरस्वामिविरचित सत्याथदर्शन
प्रथमं चतुर्थं अध्यायं पूर्णं हुआ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।



सच्चिदम्बररूपेण यदि स्वात्मा न भूष्यते ॥

वद प्रयोजन चात्मन् किं बाह्याम्बरभूषणात् ॥ ७१ ॥

ससृष्टार्थः—एतत् वितस्त्ररूपेण वस्त्रेण यदि स्वात्मा न भूष्यते, अढाकियते तदा हे आत्मन्! बाह्याम्बरभूषणात् ते किं प्रयोजन अपितु न किञ्चित् फल सिद्धयति ।

THE FIFTH CANTO

If one's soul is not beautified with cloth in the form of a supreme Spirit, oh ! soul, say what is the purpose of your resorting to outer garments ? [and ornaments] No good will come out of it [71]

अर्थ — हे आत्मन् ! यदि तुमने अपने आपको “सच्चिदानन्द” रूप वस्त्रस विभूषित नहीं किया तो बताओ, यह बाह्य वस्त्राभूषणस तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, अर्थात् कुछ भी नहीं ।

पौद्गलिक वस्त्राभूषण तो केवल भार बढ़ानेवाले हैं तथा पुराने होनेपर इनकी सुन्दरता भी बिगड़ जाती है, किंतु “सच्चिदानन्द” रूप वस्त्र ही अविनाशी और सब विपदाओंसे रसक परम विभूषण है, जिसे विवकी जन धारण करते हैं ।

भावार्थ—शास्त्र बन्नाभूषणों और अलंकारादिकोंके द्वारा सिर्फ विषयकपायादिककी वृद्धि होकर काम उत्पन्न होता है। इनसे आत्मकल्याण नहीं हो सकता है।

न च कस्यापि निन्दार्थ, न ख्यात्यादिक हेतवे ॥

निश्चीयते ह्यतो वृत्ति, सतां कल्याणारिणी ॥ ७१ ॥

संस्कृतार्थः—या द्वि न कस्यचिन्नि दाप्रशसार्थं न च स्वस्मै परस्मै वा ह्याति, लाभ, पूजादिहेतव, अपितु सर्वेषामव कल्याणकारिणा, अतः सा एव सताम्=सत्पुरुषाणां वृत्तिर्निश्चायते।

The conduct of the good is therefore, determined not to reproach others, not for fame etc but it does good to all (72)

अर्थ—जिसमें न ता किसीकी निंदा प्रशंसा है, न अपने लिए ख्याति, लाभ, पूजा आदिकी कामना है, किंतु जिसमें सबका कल्याण है, ऐसी सज्जनों (सतों) की वृत्ति होती है।

भावार्थ—सत्पुरुष वही हो सकता है जो विषय कपायादिककी बाँडवोंसे रहित होकर मायास अलिप्त हा, तथा आत्महित और परहित करनेमें रत हा।

सूरे सद्ग्रथकर्तृमें, कु-युसिंधोश्च धीमत ॥

अभिप्रायोऽस्ति यत्सत्य, तदेवास्ति च सौख्यदम् ॥७३॥

मदेवास्तांति सत्य नाऽभिप्राय स्यात्कदापि कौ ॥

किंतु सत्येन शांति स्याल्लोकद्वयहितावहा ॥ ७४ ॥

सस्कृतार्थः— श्री कुन्तुसिधुगुरोरेणु धीमत मयस्यास्य प्रणे
 सुपमेवामिनावाऽस्ति वास्तव तदेव मे, तद्व सौख्यद, य मे तदेव
 सत्यमिति दुःखमहो नास्ति, यन सायेनेव उमऽरे शोके दितावहा
 शांतिर्व्यक्ति ।

This is the true opinion of me Kunthusagar
 the learned preceptor the writer of this good book
 There is no obstinacy, but this opinion is benevo-
 lent to all in this world. "Whatever is mine, is
 true ' This is not my opinion. Let there be peace
 by the truth in both the worlds This place will
 achieve happiness [73 74]

अर्थः— इस ग्रन्थका प्रतिपादन करनेवाले परम बुद्धि
 यान् श्री कुन्तुसागराचार्य का तो यही अभिप्राय है कि जा
 वास्तवमें श्रेयस्कर और सत्य है, वही हमें स्वीकार है ।
 हम कहते हैं या जा हमारा कहना है वही सत्य है ऐसा
 दुराग्रह वा दुनियामें करना ही नहीं चाहिये । किंतु सत्यसे
 ही उभय साक्षमें सुखदायक शांति की प्राप्ति होती है ।

भाषार्थ — ग्रन्थकर्ताका अभिप्राय यही है कि सत्यको
 अपनाना जरूरी है । मरा है सो ही सत्य है ऐसा दुराग्रह
 नहीं करना चाहिए । इतना ध्यानमें रखना आवश्यक होगा
 कि सब कोई अपनेको सत्य मतलब है परन्तु जिससे
 आत्मकल्याण और विश्वकल्याण हा वही सत्य है ।

न स्थिन स्वपद किं त स्थिनस्यान्यमयाजन ॥

एव तत्यमयोघार्थ, मणीत स्यात्मसिद्धय ॥ ७५ ॥

वचनका सदुपयोग

हित मित प्रिय सत्य यदि न ब्रूयते वच ॥

किं तद्वच फल तर्हि चद मे स्याद्विशेषत ॥ ७६ ॥

सस्कृतार्थ — यदि स्वपदे स्वरूपे न स्थित, अथप्र स्थितस्य किं प्रयोजन, एव स्वात्मसिद्धये=आत्मछामार्थं, तत्त्वप्रबोधार्थं प्रणीत, किंचित्प्रतिपादितम्, हित=परिणाम सुखावह, मित=आवश्यकता नुकूल, प्रिय हृद्य, स य=तत्त्वपूर्ण, वच वचन, न ब्रूयते=नाश्रयते, तर्हि तद्वच फल विशेषत किं स्यात् । इति मे प्रतिपादय ।

Oh! soul, if you will not try to achieve your right place, what of your settling in other places! Hence it is discussed for the understanding of principles and welfare of the soul. If benevolent, agreeable, loving, and truthful words are not spoken, what is the fruit of such words? What will there be my speciality then! (Hence a man can attain a high position if he speaks benevolent measured, loving and truthful words.) (75-76)

अर्थः—यदि अपने निजस्वरूपमें स्थित नहीं हुवे तो अन्यपदमें स्थित होनेसे प्रयोजन ही क्या है, इस प्रकार आत्मछाम अर्थात् अपने मछाईक लिये और तत्त्वका ज्ञान करानेके लिए यह किंचित् प्रतिपादन किया है। तथा प्रत्येक प्राणीको सदा यह भी सोचना चाहिये कि यदि वह हित, मित, और प्रिय सत्य वचन न बोले तो इन वचनोंका फल ही क्या? अर्थात् हितमित प्रिय वचन से ही मनुष्यकी श्रेष्ठता ज्ञात होती है ।

भावार्थ — जिब्रह्म अग्रभागमें सरस्वतीका निब स है। इसलिए आत्मद्विज और परहितक वचन पोछना ही मनुष्य जन्मको सार्थक बनाना है और स्वस्थानमें स्थित रहनेमें ही स्वपरकल्याण है।

धनका सदुपयोग

दान धर्म धन यन, श्रीदे नैव नियुज्यते ॥

किं तद्धनफल स्यात्त, वा तद्दत्तमयाजनम् ॥ ७७ ॥

संस्कृतार्थ — धनात्मना श्रीदे=स्वस्थानप्रद कार्यकलाप, यथा दान, धर्म, धन नैव नियुज्यते, तस्य धन किं फल स्यात् ? किं वा तद्दत्तमयाजनम् सिद्धयति ?

If a person does not utilise his wealth in benevolent actions such as of donation and religion, what is the fruit of the wealth to him and of the person born in this world ? (77)

अर्थ — जिसन धन पाकर भी उसे दान, धर्म आदि उत्तम कार्योंमें नहीं लगाया हो ता उनके धन पानेका फल ही क्या हुआ और उनक देहका प्रयोजनही क्या सिद्ध हुआ।

भावार्थ — धन सद्गति और दुर्गति दोनोंका कारण है। इसलिए उसको आत्मद्विज और परहितमें लगाकरके दुर्गतिसे बचना चाहिए।

शक्तिका सदुपयोग

प्राणिना रक्षणं शक्तिर्यदि नैव प्रयुज्यते ॥

किं तच्छक्तेर्यद् म्यात्मन् विधत्ते कौ प्रयोजनम् ॥ ७८ ॥

संस्कृतार्थ — ह स्वात्मा ! प्राणिनां=सर्वसत्वानां रक्षण शक्तिर्वैद्य यदि न प्रयुज्यत, तर्हि तस्या शक्ते कौ=टोक किं प्रयाज्य विद्यत ? इति षट् म कथय ।

Oh soul ! If your power is not utilised to protect all beings, say what is the use of your power? what is its purpose in this world ? (78)

अर्थ.—ह आत्मा, यदि प्राणिरक्षामें तुमने अपनी शक्ति नहीं लगाई तो उस शक्ति प्राप्त करनेसे इस दुनिया में तुमने कौनसा प्रयोजन मिद्ध किया, अर्थात् कुछ भी नहीं । शक्ति पानेका फल यही है कि इससे दुनियामें दया और निर्बल्लोंकी रक्षा की जाव, तभी अपनी भी सुरक्षा हो सकती है । यदि शक्तिका केवल स्वार्थसाधन और परपोषामें ही लगाया तो महापापका कारण बन जाती है ।

भावार्थ — शक्ति पाकरके विश्वरक्षा करना ही मनुष्यता है । इसके बिना उसका कोई मूल्य नहीं है । पशुओंमें स्वाथ साधनके हतु शक्तिका दुरुपयोग होता है ।

विवेकका सदुपयोग

स्वात्मा विवेकबुद्ध्या न भवाब्धे. यदि तार्यते ॥

किं तद्विवेकबुद्धे स्यात्फल मे तत्त्वतां वद ॥ ७९ ॥

संस्कृतार्थ — विवेक = सदसद्विवारस्तस्य बुद्धिस्तया, स्वात्मा स्वजीव भवाब्धे = ससारसागरान्न यदि तार्यत=उत्तार्यत, तदा तद्विवेकबुद्धेः किं फल स्यादिति मे तत्त्वत यथार्थता वद ।

If the soul can not cross the ocean in the form of the worldly life by common sense what is the fruit of possessing common sense? Please tell me conformably to the truth [79]

अर्थ:—सद्ब्रह्मसङ्क विचार स्वरूपवाली विवेक बुद्धि से यदि अपनी आत्माका समारसागरसे पार नहीं उतारा ता विवेक बुद्धि पानेका फल ही क्या होगा, यह सुधे ठीक र बताओ ।

भावार्थ —समारके अन्य समस्त कार्य तो महज ई तथा आक वार सम्पन्न भी किय जा चुक हैं । किंतु आत्माका उदार करना ही महान् कार्य है । यदि यह नहीं किया तो कबल समारभ्रमण ही है । इसलिये विवेक बुद्धि पाकर आत्मादारमे लगाना यही इसकी सफलता है । मानवोंका अतिम ध्यय कौण्डिकशांतिक माध र आत्म शान्ति प्राप्त करनेका होना चाहिए ।

आत्मासुखान

यदि स्वात्परस शुद्ध प्रयत्नात् च पीयत ॥

दुग्धादिपानत किं ते स्याद्विशेषमयाजनम् ॥ ८० ॥

ससृष्टार्थ —यदि शुद्धस्वात्मानुभवस प्रयत्नपूर्वक र पीयत तदा दुग्धादिपानत किं विशयप्रयोजन स्यात् ? किंचिदित्यर्थ ।

If the juice of experience of pure soul is not tasted (drunk) with efforts, what is your speciality in drinking milk, etc [80]

अर्थ — शुद्ध आत्माका अनुभव रूपा रस यदि प्रयत्न पूर्वक नहीं पीया तो दूष आदिक पीनेसे भी तुम्हारा क्या विशेष प्रयोजन सिद्ध होगा। दूष पीनेसे तो थोड़ीसा तृप्ति होती है। यदि आत्माका अनुभव रूपा रस पीया जावे तो परम आनन्द प्राप्त होता है।

भावार्थ — अनक प्रकार पौद्गलिक रसका पान करते अनतकाल बीत गया, परन्तु आशतक तृप्ति नहीं हुई। आत्मिकरस पीनेसे अछौकि शांति और समताभाव रखनेसे छौकिकशांति प्राप्त होती है।

आनन्द भोजन

यदि न भुज्यते यत्नात्स्वात्मोत्थ शुद्धभोजनम् ॥
केवल मोदकादीनां भोजनार्त्तिक प्रयोजन ॥ ८१ ॥

संस्कृतार्थ — यदि स्वात्मात्थशुद्धभोजन न भुज्यते तर्हि किं प्रयोजन सिद्धयति केवल मोदकादीनाम् भक्षणात् ?

If the pure dinner originating from the soul is not taken with exertion, what is the use of your eating only sweets, etc ? (81)

अर्थ:—यदि प्रयत्नपूर्वक शुद्धात्मविचाररूप भोजन नहीं किया तो केवल लड्डू खानेसे भी क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ। लड्डू आदि खानेसे तो थोड़ी देरके लिए भूख मिटती है तथा अधिक खा लिये जावे तो अतृप्ति रोगादिककी उत्पत्ति भी हो जाती है। इसलिये केवल

छद्दु उदानमे ही आनद नहीं है, किंतु सच्चा आनद अपने शुद्धात्माके बिवारमे है ।

मावार्थः—पतञ्जल यह है कि पिरिध व्यंजनसे आत्मा ठस नहीं हुभा है और न हो सकता है । परंतु स्वात्पोत्पन्न शुद्ध भोजनसे ही आत्मा सतुष्ट हो सकता है ।

ज्ञानजलस्नान

ज्ञानाम्बुस्नानत स्यात्मा यदि शुद्धा संवेद्य ते ॥
किं जलस्नानशुद्ध स्यात्कल भुवि प्रभो षद ॥८२॥

सस्कृतार्थः—यदि त स्वात्मा ज्ञानाम्बुस्नानत शुद्ध पवित्र न भवत तर्हि भुवि जलानानशुद्ध किं फल छिदयति ।

If the soul is not purified with water in the form of know'edge, what is the purpose of your bathing in water in this world ? [82]

अर्थः—यदि तूम अपनी आत्मा को ज्ञानरूप जलसे शुद्ध नहीं बनाते हो तो जल स्नान द्वारा शुद्धि करनस भी क्या प्रयोजन सिद्ध हावा है ? जलस तो केवल शरीरकी बाह्य शुद्धि होती है सो भी योही हेरके लिए ही । शरीर फिर बेसा ही पत्थिनका पत्थिन । इसलिये यदि चाहते हो तो ज्ञानरूप जलसे आत्माको

मावार्थ. —आत्मशुद्धि ज्ञानरूपी
सकती है । जलस केवल शरीर
होती है । इसके लिए मयत्न

भूपतीनां देशप्रमुखाणां कृत विशेपमननाया शिक्षा ॥

आग विश्व व आरवशांति कानक डिर् राजा और दशके नेताओंको शिक्षण मनन कान योग्य शिक्षा बतलात है ।

हिंसासत्पातिलोभादि, स्नेया-यस्त्रिसमागमान् ॥

क्रुर्वन्तु केवल नति, द्रुवन्तु विश्वनायका ॥ ८३ ॥

किन्तु हिंसादिलोभानां, स्यान्नावश्यकना नृणाम् ॥

व्यवस्थेति मिथ कार्या विद्वदशास्त्रैस्तु कैर्नृपैः ॥ ८५ ॥

सस्कृतार्थ — विश्वांतिसमुत्सुकै नीतिनिपुण नृपाद्यै ,
हिंसासत्पातिलोभस्तयवादागामिर्बर्षणादानाम् केवल निपवाङ्मा एव न
प्रचारणीया, किन्तु एतयामनर्थानां आन,पकता एव कायचिन्न मये
दिनि व्यवस्था काया ।

Men should not resort to violence they should not tell a lie they should not be too covetous They should not commit theft, and they should not wish to enjoy other's wives The States men in the world should clearly declare themselves against such thing There should be no necessity for the Kings to resort to violence, covetousness etc Kings wishings the achieve worldwide peace should make laws and treaties (arrangement) among them with regard to violence, etc (84 85)

अर्थः—हिंसा घृठ, चोरी, अतिक्राम, परस्त्रीगमन इत्यादि अनर्थोंको रोकनेक डिर् केवल हुवमया कान-

घनाकर ही मजापालक अपने कर्तव्यकी इतिथी न समझे, किंतु विश्वशांतिके अभिलाषी राजागण, नृपति महलका चाहिये कि किसी भी जीवको हिंसा, झूठ, चोरी, अति संग्रह आदि पापोंकी आवश्यकता ही न हो एसी दृढ व्यवस्था करे ।

भावार्थ — सार विश्वका धार राजाओंक ऊपर है । विश्वको तारना और डुबोना भूपतियोंक हाथमें है । इस लिये प्रपकर्ता का अभिप्राय है कि मजा को पुत्रवत् समझकर उसका पालन व रक्षण करना आवश्यक है और यही राजाओंका प्रधान कर्तव्य है कि जिससे कीर्ति यावत् चद्र दिवाकर उजबल पनी रहे और मजापर कोई आपत्ति न पड़े । अपनी आत्मा पवित्र बन ।

वस्त्रान्मृगहविष्यादि दानैर्न दण्डदानत ॥

यत सर्वे मजा स्वस्था, अन्यथा जल्पन वृथा ॥८६॥

धीमता स्वात्मनिष्ठेन, कुन्थुसागरसूरेणा ॥

दत्ता शिक्षा समीचीना, श्रीदेति विश्वशान्तये ॥८७॥

संस्कृतार्थः— वस्त्रान्मृगहविष्यादिदानैः, यद्योचितैः प्रजा स्वस्था कार्या, न केवल दण्डदानैः दमनीया, अन्यथा मजापालकाय केवल जल्पनमात्रमेव वृथा स्यात् । इति समीचीना शिक्षा या सर्वेभ्यः श्रीदा कल्याणकारिणी अस्ति सा श्री स्वात्मनिष्ठेन धीमता कुन्थुसागरसूरेण केवल विश्वा तये दत्ता ।

The subjects should be made happy granting them clothes, food, house, education, etc and should not be given mere punishment Good arrangement of supplying the above things will make the people happy It is useless to speak or order only The learned preceptor His Holiness Kunthusagar who is completely inclined to his soul gives this good advice which brings happiness and will restore peace in the world (86-87)

अर्थ:— धन, गृह, विद्या, अन्न इत्यादि अत्यावश्य-
कीय वस्तुओंका यथोचित प्रबन्धके द्वारा दान करके मजा
को स्वस्थ सुखा करना चाहिये । केवल दण्डदानसे मजा
स्वस्थ नहीं आती । अतः उक्त वस्तुओंका यथोचित दान
प्रयत्न न हो सक तो केवल कहना या हुक्म चलायाना युवा
है । यह कल्याणकारिणी शिक्षा श्री आचार्य स्वात्मनिष्ठ
धीमान् कुण्डसागर महाराजने केवल विश्वशक्तिके हेतु
से दिया है ।

भावार्थ — वर्तमानमें देखा जाता है कि कितने ही
शासक गण नियम उपनियम आदि तो बढाते बढे जाते हैं,
किंतु यह नहीं देखते कि इनके द्वारा मजाको वास्तवमें
कितनी राहत मिली है । मजाको मत्त्यक आवश्यक वस्तु
मुल्य तथा सुख शक्तिकी व्यवस्था हो तभी सब नियम
कानून आदि सार्थक हो सकते हैं । अन्यथा सब कोरा

दिखावा मात्र देा तो उसस राजा व मजा की क्या भलाइ
हा मक्तो है । सारांश—दुष्टोंको दण्ड देना जरूरी है परंतु
निबल और सज्जन आत्माओंका पावन करना भोजन
करनेसे भी ज्यादा जरूरी है ।

वास्तविक सुखवस्था और सुखका कारण क्या है ?

अहिंसा धीतरागत्व नृणां म्यात्सुखकारणम् ॥

तद्विनानतकार्येऽपि कृते न स्यात्नृणां हितम् ॥ ८८ ॥

इति युक्तिप्रमाणादि प्रणीत सुखकारणम् ॥

धीमता स्वात्मानिष्ठन कुन्धुसागरसूरिणा ॥ ८९ ॥

संस्कृतार्थः—इति निक्षेपेन “अहिंसा=मा कश्चिद् दुःख-
मात्रभवेदिति” मात्र, धीतरागत्व=इदं मे मे इति भावामात्र”
तद्द्वयमत्र सुखकारणं सत्यसुखापायो वर्तते, तद्द्वयं विना, अन-
तेपि कार्यकलापे कृतं नृणां हितं न स्यात् । इत्यतदेव सुखस्य,
युक्तिप्रमाणतश्च कारणम् इति धीमता आत्मवता श्रीकुन्धुसाग-
राचार्येण प्रणीतम् ।

Kings will get happiness by resorting to non-
killing and possessing good temperament
which is void of anger hatred etc If the kings
will not have these qualities they will not be
happy, though they may do hundreds of other
activities

This is explained with proof and reasoning as blissful by the learned sage Kuntuesgar who is completely inclined to his soul (A8-89)

अर्थ — ससारमें कोई भी दुःखमार्ग न हा ऐसे परिणाम को अहिंसा कहत है, और मेरा मेरा इस प्रकारक ममताभावका त्याग वही वातरागता है। अहिंसा और वातरागता ये दो हा मनुष्योंका सुखक कारण है। इनके बिना अनन्त उपाय या कार्य करनेपर भी मनुष्योंका सच्चा सुख या हितका उपाय नहीं मिलता। युक्ति और प्रमाणसे सिद्ध यही सन्ध सुखका उपाय है ऐसा श्री आत्मनिष्ठ श्रीमान् कुशुमागराचार्य फरमाते हैं।

भावार्थ — चिर विश्वशांतिक छिप्, अहिंसाधर्म ही अयाधित हतु है, इसक बिना विश्वशांति न कभी हुई है और न हागी। आत्मशांतिके छिये वातरागता ही प्रधान है। इसके बिना आत्मशांति कठिन ही नहीं परन्तु असंभव है। वातरागता ही या निर्विकारता स्वतंत्रताकी जननी है और निराकुलता मासकी कुर्मी है।

इस छिप् अहिंसा धर्मके उपासकोंको हमेशा आत्मशांति व विश्वशांतिक छिप् मयत्न करना चाहिए। आत्मविकासकी पूर्णता हानेपर यह मनुष्य स्वयं देव बन जाते हैं तभी विश्वका पूर्ण उद्धार होता है।

सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन — सत्यार्थदर्शन

प्रथमनिर्माणोदश

सत्यार्थधर्मस्य यथास्वरूप ।

तथा प्रणीत च समन्वयन ॥

मिथो विवादादिसमूलरान्यै ।

ग्रथे किलास्मिन्न परोस्ति इत् ॥ ९० ॥

संस्कृतार्थः—प्रकृतप्रथमनिर्माणस्यादश स्पष्टीकुर्वन् आह—
प्रथोऽयं द्यातिलभपूजापैदिकहेतुसिद्धयर्थं न प्रणीत, अपितु
सत्यार्थस्वरूप यथा वर्तते, तत्प्रकाशनार्थं, तथा च दृष्टिभेद
दोषसमुत्पन्नविवादप्रशान्ति च समन्वयन धर्मस्वरूप प्रतिपादित ।
विश्वशांतिरेव महापुरुषाणां इष्टमभीप्सितमिति सुनिश्चितत्वात् ।

Remembering the principles of the religion [सत्यार्थ] as they exist this book is written to remove all the doubts and differences among people. There is no object other than this in writing this book

END OF FIFTH CANTO

अर्थ — यह ग्रंथ रूपाति लाभ पूजा प्रतिष्ठादि ऐहिक स्वार्थके हेतु को दृष्टिमें रखकर नहीं बनाया गया है । अपितु इसके निर्माणमें केवल यही उद्देश है कि लोकमें परस्पर अज्ञानदोषसे उत्पन्न विवाद कलहादि दूर हों, प्रत्येक विषयको यथासंभव समन्वयकी दृष्टिसे देखनेके

लिए लोग प्रयत्न करें। इसीसे विश्वशांति हो सकती है। उसीको दृष्टिमें रखकर इस ग्रंथका निर्माण किया गया है।

भाषार्थ:— साक्षरों में शांति, विद्वेष कलहादिक माय भ्रमानके कारणसे ही उत्पन्न होते हैं। आगमोंका कथन, पुराणियोंका वदेश, परस्परकी परिपाटी आदिका ठीक २ अर्थकी न समझनेके कारण भ्रमानसे लोग आपसमें छटते फिरते हैं। इसलिए उन सब बातोंके सषयमें शांतिसे समझकर सम-वय करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए। क्यों कि बिषयक नीतिसे शांति बस्थापित नहीं हो सकती है। समन्वय आगम अविरधी है। एव परस्परके अनुकूल हो। इस प्रकार परस्पर के दृष्टिकोणको ठीक २ समझकर यदि बिषयका अध्ययन करें तो परस्पर विवाद कलहादिक उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। आचार्यश्री फरमाते हैं कि इस ग्रंथमें इसी बातके लिए प्रयत्न किया गया है कि दृष्टिकोणभेदसे उत्पन्न अनेक विवादास्पद बिषयोंका समन्वय हो। एव लोकमें चिरशांति बनी रहे। क्यों कि विश्वशांति ही महात्माओंका मुख्य व इष्ट बिषय है। इसके अलावा इस ग्रंथके निर्माणमें ग्रंथकर्ताका अन्व कोई हेतु नहीं है।

इति श्री सदर्शमर्दिवाकर निर्मयाचार्य श्री कुशुभागरविरचिते
सत्याग्रहज्ञाने पञ्चमोऽध्यायः ।

—* प्रशस्ति *—

दीक्षागुरोर्धर्मादिवाकरस्य,
 श्रीशातिसिंधोर्विमलप्रसादात् ॥
 विद्यागुरोरेव सुधर्मसिंधा,
 ग्रन्थो मयाय रचित प्रशान्त्यै ॥ ९१ ॥
 क्वचित्प्रामादादिवशात्पमास्मिन्ग्रन्थ,
 पवित्रं स्वल्पं क्लिष्टासीत् ।
 विशोधय भुवत्यै च पठन्तुसत्तो,
 भावोऽस्ति सूररिति काव्यकर्तु ॥ ९२ ॥

सस्कृतार्थ — काऽस्मिन् कलावरे सधर्मदिवाकरस्य दीक्षा
 दायकस्य श्रीशातिसिंधा विद्यागुरो श्री सुधर्मसागरस्य विमलवरातु
 प्रसादय मया प्रशान्त्यै, आ मलामार्थं रचित । यस्मिन् प्रथममा
 दतोऽज्ञानतो वा क्वचित् स्वल्पं भवत्, स त तद्विशो य पठन्तु
 इति प्रथकर्तुं आकुण्ठुसागराचार्यस्य विनम्रभावोऽस्ति ।

I have written this book of mine for peace
 with the grace of Shantisagar who granted me
 consecration and who is as if the sun of Jainism and
 with the grace of my tutor Sudharmasagar

It is the desire of the writer of this poetye
 that if there be any short-comings committed
 through mistakes any where in this holy book let
 the good read it correcting it for achieving final
 beautytude

सत्यार्थदर्शनस्य अर्थः कल्पवृक्षकसमानः परस्परमे सुखं शान्तिका देवा इत्यादि । यद् " सत्यार्थदर्शन " ग्रन्थं जपत्क सूर्यं चन्द्रमा इ तद्वत्क जीवित रहै ।

अर्थ — बर्मदिवाकर दीक्षागुरु श्री आचार्य शान्तिसागर महाराज और विद्यागुरु श्री सुषर्मासागर महाराजके विमल प्रसादसे मैंने प्रज्ञातिके लिए यह ग्रन्थ रचा है। प्रसादसे वा अज्ञानसे इसमें जो त्रुटि रही हो उनका सशजन पुरुष सशोधन करके पढ़े ऐसा ग्रन्थकर्ता [श्री कुन्धुसागरजी] का विनम्रभाव है।

सत्यार्थदर्शनग्रन्थ कौ कल्पवृक्षवन्निमय ॥

सुखशान्तिं ददन्वाय, जीवादाचन्द्रतारकम् ॥ ९३ ॥

May this book " A glimpse of true meaning (सत्यार्थदर्शन) be read as long as there are the sun and the moon, in this world and may become like the 'Kalp tree [93]

अर्थ — पृथ्वापर कल्पवृक्षक समान परस्परमे सुख शान्तिका देवा इत्यादि, यद् " सत्यार्थदर्शन " ग्रन्थं जपत्क सूर्यं चन्द्रमा इ तद्वत्क जीवित रहै ।

श्री पृथ्वीसिंहभूषेन न्यायनिष्ठेन धीमता ॥

सुधासनापुरे पूते पुत्रवत् परिपाकिते ॥ ९४ ॥

स्थित्वा स्वात्मप्रशात्यर्थे मगलार्थं सदा सुखि ।

चतुर्विंशतिसख्यात पञ्चपट्याधिके शते ॥ ९५ ॥

शोक्ष गते महावीरे दयाधर्मप्रचारक ॥

श्रीपापशुक्रपक्षे च चतुर्दश्यां शुभे दिन ॥ ९६ ॥

स्वर्माक्षसौख्यनिष्ठेन कुन्धुसागरसूरिणा ॥

सत्यार्थदर्शनग्रन्थो विहित्वाऽप्य शिवमदः ॥ ९७ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्रीकृष्णार्जुनसंवादे । अर्जुनस्य वचनम् ॥ १०० ॥

The sage Kunthusagar wrote this blissful book 'A glimpse of true meaning' (सत्यार्थदान) on the fourteenth day of the bright half of the month Pausha [पौष] in the 2465th year of Lord Mahavira's achieving Nirwan (final emancipation) It is the time when the just and learned Rajah Prithvisinha of the city Sudasana is ruling over his subjects like his sons. This book is written so that everlasting peace may rule in this world [91-97]

अर्थ — सुदासना स्टेटके अत्यन्त पुदिमान् न्यायमिय परम शुद्धभक्त भूमिन् महाराजा पृथ्वीसिंहजी नरेश जो अपनी प्रजा को पुत्रवत् पालन करते हैं। स्वपर कल्याणार्थ बर्हा कई दिन ठहर करके वीरनिर्वाण सन्वत् २४६५ में पौष शुक्ल चौदसके दिन अपने आत्मिकसुखमें निमग्न महर्षि कुन्धुसागर आचार्यने मोक्षको प्रदान करनेवाला यह सत्यार्थ दर्शन नामका प्रथम भूष्य जीवोंके उपकारार्थ लिखा।



श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला.

उद्देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित 'प्रयोगका प्रकाशन व प्रचार करना व अनुकूलताके अनुसार इतर प्राचीन जैनप्रयोगका उद्धार तथा प्रकाशन करना है ।

सामान्य नियम.

- १ इस ग्रन्थमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकृत की जायगी ।
- २ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रन्थमालाका स्थायी समाप्त बनेंगे उनकी ग्रन्थमालासे प्रकाशित सर्वप्रथम पोस्टेज खर्च लेकर विनामूल्य दिये जायेंगे ।
- ३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिन्तक बनेंगे उनकी पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित प्रथम दिये जायेंगे ।
- ४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनकी पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित प्रथम दिये जायेंगे ।
- ५ अन्य सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे ।
- ६ प्रयोगके मूल्यसे आई हुई रफमका उपयोग ग्रन्थमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले प्रयोगके उद्धार में ही होगा ।
- ७ ग्रन्थमालाके ट्रस्टबीड होकर मुबईमें वह रजिस्टर्ड होचुका है ।

सहायता भेजनेका पता—सेठ गोविंदजी रावजी दोशी

ठि रावजी सुखाराम दोशी, कोषाध्यक्ष, सोलापुर

ग्रन्थमालासंबंधी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें ।

वर्षमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मन्त्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला, सोलापुर